बुन्देलखण्ड की प्राचीनता

: भाषावैज्ञानिक ऐतिहासिक एवं भौगोलिक अनुशीलन

विद्यावारिधि

डॉक्टर भागीरथप्रसाद त्रिपाठी 'वागीश शास्त्री'

ज्येष्ठानुसंधानपण्डितगणाभ्यन्तर

(Senior Research Fellow)

वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालय

१९६५

विद्वद्-गोष्ठी

वाराणसी

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार १९६३
मूल्य
सवा दो रुपये

मुद्रक
सत्यपाल धवन
दी सैंट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस
दिल्ली-६

श्री प० जवाहरलाल नेहरू
लेखक के फार्म पर दुग्धपान करते हुए

दण्डक-जनपद

की

विशेषताओं

के

पारखी

दिवङ्गत

पूज्यजनक

श्री यमुनाप्रसाद त्रिपाठी

के

पद-पद्मों में समर्पण

आराध्यदेव !

श्रीमत्प्रतीक्ष्य के सान्निध्य से वञ्चित रहकर आपके इस वत्स ने श्रीमत्स्वान्त-निशान्त-सुवासक यह प्रसून सजाया है। काश ! यदि आप इहलोक में होते तो मैं अपने मस्तक पर आशीर्द-हस्त का स्पर्शानुभव करता। अन्ततः आशान्वित हूँ कि परलोकस्थ भी वरिवस्य आप, मेरा यह प्रस्तुत उपहार अङ्गीकृत करेंगे।

इति

विनयावनत

वागीश शास्त्री

महाशिवरात्रि २०२१

के० २३/६ दूधविनायक

वाराणसी १.

भूमिका

भारत मे गौ-सवधी-साहित्य का अभाव है। हिन्दी मे तो, जिसे भारत के अधिक-से-अधिक लोग बोलते और समझते हैं, ऐसे साहित्य का और भी अभाव है। इस विषय पर कुछ पुस्तके अग्रेजी मे लिखी गई हैं। कुछ गौ-प्रेमियो एव विशेषज्ञो ने इस कमी को दूर करने के लिए हिन्दी मे कुछ पुस्तके लिखी हैं, परन्तु वे अग्रेजी की पुस्तको के आधार पर ही लिखी गई प्रतीत होती है। आजकल जो गौ-संवधी-साहित्य उपलब्ध है, वह भारत-जैसे देश मे न तो अधिक लाभदायक सिद्ध हो सका है और न तत्सबधी समस्याओ को हल करने मे सहायक ही।

सन् १६१८ मे महात्मा गाधी तथा कुछ गौ-प्रेमी साथियो और अपने पिता के गौ-प्रेम से प्रेरित होकर मैंने इस विषय का अध्ययन आरभ किया था और वास्तविक जानकारी तथा अनुभव प्राप्त करने के लिए समस्त भारत का पर्यटन भी किया था। इन यात्राओ मे अनेक सस्थाओ, पशुशालाओ तथा सबद्ध कालेजो के कार्य का अवलोकन किया और उनमे रहकर गाय-वैलो के रहन-सहन तथा अन्य स्थितियो का अनुशीलन भी करता रहा। इस विषय पर मैंने कुछ भारतीय और विदेशी साहित्य पढा है और विगत १२ वर्षों से अधिक खेती करने, पशु चराने, गोवर उठाने, चारा काटने, पशुओ को खिलाने, गाय दुहने, उनके रोग-निवारण तथा प्रजनन कराने आदि का कार्य करता रहा हू। इस विषय से सम्वन्धित सरकारी और गैर-सरकारी सभाओ तथा कमेटियो की वैठको से भाग लेकर अनुभव प्राप्त करने के साथ-साथ, इस बारे मे सरकार और जनता का क्या दृष्टिकोण है, यह भी समझने का प्रयत्न किया है।

गौ-सबधी साहित्य के अभाव को देखते हुए मैं कुछ दिनो से इस

प्रकाशकीय

सौभाग्य से हमे डॉ० वागीश जी का 'बुन्देलखण्ड की प्राचीनता' नामक ग्रन्थ प्रकाशित करने का शुभावसर उपलब्ध हुआ है। हम उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दे रहे है—

जन्म : मध्यप्रदेश के सागर जिले के विलइया ग्राम मे, संवत् १९९१ आषाढ़ शुक्ल त्रयोदशी सोमवार। **शिक्षा और कार्य :** सन् १९५३ मे हाई स्कूल; सन् १९५४ मे नव्य व्याकरण मध्यमा (इतिहास-भूगोल के साथ), विशेष योग्यता के कारण शास्त्री में प्रान्तीय छात्रवृत्ति। सन् १९५६ मे नव्य-व्याकरण शास्त्री (With English)। सन् १९५७ मे साहित्यरत्न। सन् १९५९ ई० मे व्याकरणाचार्य और उसी वर्ष वाराणसी के टीकमाणी संस्कृत कालेज मे व्याकरण के प्रधानाध्यापक नियुक्त। सन् १९६४ मे वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से पण्डित क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय के निर्देशन मे 'पाणिनीय धातु-पाठ-समीक्षा' निबन्ध पर विद्यावारिधि (डॉक्टर ऑव फिलॉसफी) की उपाधि प्राप्त हुई। संप्रति उक्त विश्वविद्यालय मे सीनियर रिसर्च फेलो। **प्रकाशन :** सन् १९५४ ई० से पत्र-पत्रिकाओ मे निबन्ध। सन् १९५८ ई० में 'कृषकाणां नाग-पाशः' (रूपक) एवं 'कथासंवर्तिका (कहानी-संग्रह) बालोपयोगी साहित्य। **उपनाम :** लेखन-क्षेत्र के लिए अपने नाम का सार रूप मे संक्षिप्तीकरण—भा= प्रतिभा रूप गी [गिर् (रो रि—रलोप, ढ्रलोपे—दीर्घं)]=वाक् है; रथ= रमण-साधन; जिसका ऐसा वह—'वागीश'। नाम का अन्त्य पद है—त्रिपाठी= तीन वेदो (या शास्त्रो) का पाठ करने वाला। इसके स्थान पर पर्यायवाचित्वेन उपयुक्त बैठने वाला शब्द है—'शास्त्री'। इस प्रकार 'भागीरथ त्रिपाठी' का साराश हुआ—'वागीश शास्त्री'। संक्षेप-शैली मे आद्य और अन्तिम पद गृहीत होते है, मध्यम नहीं।

अन्त मे जगदीश्वर से प्रार्थना है कि वे हमे लेखक के दशाधिक ग्रन्थ प्रकाशन की शक्ति प्रदान करें।

मन्त्री

विद्वद्-गोष्ठी, वाराणसी।

जिससे पुस्तक का अध्ययन करते समय पाठक विषय को आसानी मे समझ सके ।

अगले अध्याय मे भारत के सारे पशुओ का क्रम से वर्णन किया गया है । फिर उस क्रम से समूचे भारत मे मिलनेवाले ४८ जातियो के पशुओ का विधिवत् विवरण दिया है। अत मे विभिन्न प्रदेशो के स्थानिक जलवायु और पशुओ के गुणो के आधार पर, सक्षेप मे सभी वर्णित पशुओ का वर्गीकरण करके, तालिका मे विश्लेपण किया गया है ।

अत मे भारत के गाय-बैलो के विश्लेषण तथा उनके सुधरे हुए स्वरूप की एक तालिका दी गई है, ताकि पाठक उसे देखकर आसानी मे यह निश्चय कर सके कि अमुक प्रदेश या स्थान मे किस प्रकार के पशु मिलते है, उनकी वर्तमान स्थिति क्या है, तथा उनकी स्थिति को कैसे सुधारा जा सकता है ।

उपयुक्त साहित्य के अभाव मे आज भारत मे उपलब्ध जन-धन पशु-धन तथा अन्य साधनो का ठीक उपयोग नही हो रहा है और अपर्याप्त जानकारी के कारण पशुओ की उन्नति नही हो पा रही है । पिछले वर्षो मे भारत मे पशुओ की उन्नति का जो कार्य हुआ है, उसका अध्ययन करे तो मालूम होगा कि धन और शक्ति खर्च करके तथा अनेक पशुशालाओ एव अन्य सस्थाओ मे प्रयोग व अन्वेषण होने और उनमे कुछ सफलता मिलने पर भी, पशुओ की उपयोगिता नही बढ सकी है, बल्कि दिन-पर-दिन उनकी दशा गिरती ही जा रही है। इस कमी को दूर करने का प्रयास करना है । इस ओर यह प्रकाशन एक कदम है ।

प्रस्तुत पुस्तक को लिखने मे यह भी ध्यान रखा गया है कि यह पुस्तक एक सदर्भ-ग्रथ और भारतीय खेती और पशुपालन-विद्या के स्कूलो र कालेजो के पाठ्य पुस्तक का भी काम दे सके । आशा है, यह अपने उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायक हो सकेगी ।

सन् १९३१ मे प० जवाहरलाल नेहरू मेरे पशु-पालन फार्म (कैटिल-

बुन्देलखण्ड की प्राचीनता

की

अन्वयिका

विषय-सूची

आत्मनिवेदन

विगत पाँच वर्षों से क्रियावाचक धातुओ पर अनुशीलन करते समय हमे यह अनुभव हुआ कि बिना प्रादेशिक भाषाओ के कोशो की तैयारी के, संस्कृत के अप्राप्त वाङ्मय का पता नही लगाया जा सकता। 'भारत की बहुसंख्यक प्रादेशिक भाषाओ के कोश कैसे बनाये जा सके'—विचार करते-करते मन मे आया—'क्यो न बुन्देलखण्डी कोश तैयार कर लिया जाए!' बुन्देलखण्डी भाषा मेरी मातृभाषा है। अतः चिन्तन-मनन करके शब्द लिखना प्रारम्भ कर दिया। उस समय थीसिस का कार्य समाप्त करके छुट्टी पा चुका था। बुन्देलखण्डी साहित्य-विषयक पुस्तको के अध्ययन की इच्छा जागी। संस्कृत का पुस्तकालय और हिन्दी साहित्य की पुस्तको की आशा! तीन पुस्तकों को छोड़ चौथी नही मिली। वे थी—१—बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, २—बुन्देली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन और ३—बुन्देलखण्डी का कहावत कोश। पहली दो पुस्तको के अध्ययन करने पर पता चला कि 'बुन्देलखण्ड' नाम छै सौ वर्षो से अधिक पुराना नही।

इससे पूर्व इस नामकरण के संबन्ध मे हमारा कभी ध्यान भी नही गया था। हमने यह समस्या अज्ञात मन के सम्मुख रख दी कि इसका सही हल खोज कर निकाल दे। उसने दो दिन पश्चात् सुझाया कि उत्तराखण्ड, रेवाखण्ड और काशीखण्ड के समान इसे भी तभी का कोई खण्ड होना चाहिए। फिर क्या था, इतना संकेत पर्याप्त हुआ। हम १९६३ दिसम्बर से भारतीय इतिहास-भूगोल के पर्यालोडन मे जुट गये। महाभारत मे भीम-सहदेव के दिग्विजय-वर्णन पर मनन करते समय दक्षिणापथ का 'पुलिन्द देश' आकर्षक लगा। हम ने फिर अज्ञात मन का सहारा लिया और उसने बताया कि इसी शब्द पर अनुशीलन करना चाहिए। डॉ० अग्रवाल जी के 'मार्कण्डेय पुराण: एक अध्ययन' ने पुलिन्द देश के विषय मे मौनावलम्बन कर रखा था[1]। हमने यथोपलब्ध सामग्री पर यथामति निदिध्यासन किया और उसका परिणाम आपके पाणिपुटो मे निवेदित है।

---

१. पुलिंद, विंध्यमौलेय (पाठान्तर—विंध्यमालेय या विंध्यमूलीक, विंध्याचल के दक्षिणी-पूर्वी जंगलो मे रहने वाले)—१५१ पृष्ठ। पुलिन्द (पाठान्तर—पुलेय)—१५२ पृष्ठ।

उसके आसपास के छोटे कदवाले सफेद, काले, गहरे गेरू के रगवाले तथा चितकवरे रग के पशु ।

उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के पशु ज्यो-ज्यो अपने मुख्य निवास-स्थान से दूर होते गये, त्यो-त्यो यहा की जलवायु, भूमि तथा अन्य स्थितियो और वहा के रहनेवालो की आवश्यकताओ, खान-पान एव रहन-सहन के अनुसार वदलते गये । उनकी आदतो, गुणो और कद आदि मे भी परिवर्तन हुआ । जिस नये इलाके मे ये पशु गये, वहा के मूल पशुओ से इनका सयोग हुआ और कही-कही पिता-पुत्री, माता-पुत्र और उनकी सन्ततियो मे वहन-भाई, भतीजा-वुआ के आपस के सयोग के फलस्वरूप वहा के पशुओ की जाति व नस्ल मूल पशुओ से भिन्न हो गई ।

भारत मे गाय और मनुष्य का गहरा सम्वन्ध है । गो-पालन मानव-सभ्यता के साथ आरम्भ हुआ । ज्यो-ज्यो मानव-सभ्यता और भारतीय सस्कृति का विकास हुआ, त्यो-त्यो भारतीय गो-पालन की दिशा मे आगे बढे, यहा तक कि, जैसा श्रीमद्भागवत मे लिखा है, जव इन्द्र का प्रकोप इतना वढ गया कि जन-धन एकदम नष्ट होने लगा, तव श्रीकृष्ण भगवान् ने उसकी रक्षा के लिए गोवर्धन पर्वत को उठाया। उस समय मनुष्यो ने पहले पशुओ को पर्वत की आड मे किया, फिर आप हुए । अर्थात् ऐसे अवसर पर भी उन्होने अपने पशुओ को अपने साथ लेकर अपनी रक्षा की । यदि इसको केवल कथा-मात्र ही माना जाय तो भी यह स्पष्ट ही है कि पशुओ से मनुप्य का कितना निकट का सम्वन्ध था। मनुष्यो के साथ पशु पारिवारिक सदस्यो की भाति वरावर रहते थे ।

जवतक यह दृष्टिकोण नही रखा जायगा कि मनुष्यो की उन्नति के बिना पशुओ की और पशुओ की उन्नति के बिना मनुष्यो की उन्नति असम्भव है, तबतक पशुओ की उन्नति और विकास भली प्रकार नही हो सकता । यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि पशु-उन्नति के कार्य मे भूमि-उपयोग, खेती, पशुओ के लिए चारा तथा दुग्ध-उत्पत्ति, इन चारो मे समता और सन्तुलन हो । इसके लिए पशुओ की, नर और मादा,

वहाँ रहकर वहाँ की प्राकृतिक शोभा, ऐतिहासिक स्थानो के भग्नावशेषो और जातियो के नामकरण की संस्कृत व्युत्पत्तियो मे रमा रहना विशेष प्रिय था। भीलोन, राहतगढ, पिठौरिया, दलपतपुर, एरण, बड़ोह, पठारी, त्योंदा, उदयपुर (का देहरा) आदि हमारी जन्मभूमि के आसपास अवस्थित है। झाँसी मे संबन्धी श्री नाथूराम चौबे के घर हमारे परिवार के एक-दो सदस्य सदा रहते आये है, उनकी शिक्षा-दीक्षा भी वहाँ होती रही है। मुझे भी वहाँ रहने का अवसर मिला और मैने आसपास की अरण्यानियो (ब्रह्मबाला, बरुआसागर, ओरछा आदि स्थानो) मे पर्यटन करके उसका उपयोग रूप लाभ उठा लिया। सन् १९५९ के ग्रीष्मावकाश मे छतरपूर, खजुराहो, पन्ना, नागौद और सतना के निकटवर्ती क्षेत्रो मे भ्रमण करके वहाँ की विशेपताओ का अध्ययन किया।

बुन्देलखण्ड मे बिखरी जातियो और रीति-रिवाजो के मूल को खोजने की जिज्ञासा वचपन से ही मन मे घर कर गयी थी। कोई मार्गदर्शक नही मिला फिर भी मुझे नैराश्य ने नही घेरा। मन मे उठे हुए वे प्रश्न अज्ञात मन के किसी कोने मे पड़े रहे। सन् १९६३ ई० मे बुन्देलखण्ड के प्रकृत अध्ययन के अवसर पर वेद, वाल्मीकीय रामायण, महाभारत और पुराणो के अथाह समुद्र मे गोता लगाते समय वे मेरे पूर्वसंस्कार सहायक के रूप मे एक एक करके सामने आ खड़े हुए। अतः मेरा यह अवगाहन स्वान्त.सुखाय सिद्ध हुआ।

शबर या शवर

महाभारत और पुराण आदि साहित्य मे 'शबर' तथा 'शवर' दोनो प्रकार के पाठ मिलते है। 'शबर' पाठ आधिक्यतः दृष्टिगोचर होता है। वैयाकरण इसे गत्यर्थक √शव् (शव) धातु से 'अर' प्रत्यय या 'शवं राति' व्युत्पत्ति दिखाकर 'क' प्रत्यय करते है। वस्तुतः व्युत्पत्ति द्वारा कसकर इसका संस्कृतीकरण किया गया है। शम्बर और शम्वर मे भी इसी प्रकार का द्वैविध्य है। सर्वत्र पाठ मिलता है—'शम्बर', पर व्युत्पत्ति करते समय वैयाकरण बना देते है इसे—'शम्वर'।

राउत अथवा रावत

लोग राउत और रावत दोनो शब्दो को जाति-विशेषण समझते रहे है। मै भी यह पहेली हल नही कर पा रहा था। इसे हल न कर सकने का मुख्य कारण था—दो असमान जातियो के साथ उक्त शब्दो का जुड़ना। अजयगढ़ और गुजरात के शिलालेख पढ़ने पर समाधान मिल गया। राउत या रावत

रखनेवाले ।

२. जाति (क्लास)—गुण और उपयोगिता मे समानता रखनेवाले।

३ नसल (ब्रीड)—समान आकृति, गुण और उपयोगिता रखनेवाले तथा उन्हे अपनी सन्तानो मे प्रदान करने की क्षमतावाले ।

४ मिश्रित (मिक्स्ड)—इस शब्द का अभिप्राय एक से अधिक कई जाति या नसल के पशुओ के परस्पर-सयोग से उत्पन्न सन्तति से है ।

५. अवर्णनीय (नान-डिस्क्रृप्ट)—जिनका रग-रूप, डील-डौल तथा गुण आदि किसीका, कुछ भी निश्चय और भरोसा न हो, ऐसे पशु ।

६ इकहरे उद्देश्य (सिंगिल परपज)—ऐसी जाति की गाय जिसकी बछिया अच्छा दूध देनेवाली गाय बने और बछडा कम काम करनेवाला बैल बने, या जिसका बछडा अच्छा काम करनेवाला बैल बने और बछिया कम दूध देनेवाली गाय बने ।

७ दुहरे उद्देश्य (डुअल परपज)—ऐसी जाति की गाय, जिसकी बछिया अच्छा दूध देनेवाली गाय और बछडा अच्छा काम करनेवाला बैल बनता है ।

८ सर्वांगी (जनरल परपज या यूटीलिटी)—ऐसी जाति की गाय, जिसकी बछिया साधारण दूध देनेवाली गाय बने और बछडा साधारण काम करनेवाला बैल ।

भारत के भिन्न-भिन्न भागो और प्रदेशो मे अनेक जातियो और नसलो के अवर्णनीय पशु मिलते है । इनका वर्णन विधिवत् अथवा ऐसे तरीके से करना, जिसको सब आसानी से समझ सके, बडा कठिन है । फिर भी इसे अधिक-से-अधिक सरल ढग से देने का प्रयत्न किया गया है । दक्षिण मे कन्याकुमारी से लगे केरल-प्रदेश से आरम्भ करके मध्य-प्रदेश, पश्चिमी तथा उत्तरी भारत के महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पजाब-प्रदेश तक के तथा हिमालय पर्वत से लगे हुए अन्य प्रदेशो के और अत मे उडीसा-प्रदेश के पशुओ की जानकारी दी गई है ।

साथ ही यह भी बताया गया है कि जिन पशुओ का वर्णन किया

मिलता तथापि उनका हिमालय[1] से संबन्ध उन्हें गौरवर्ण बतलाता है। वाल्मीकीय रामायण (किष्किन्धाकाण्ड) मे किरात हेमवर्ण और प्रियदर्शन कहे गये है—

किरातास्तीक्ष्णचूडाश्च हेमाभाः प्रियदर्शनाः ॥ ४०।२७ ।

पुलिन्दों का अभिजन या निवास

हमे इस पुस्तिका में पुलिन्द (>बुन्देल) तथा उसके पार्श्ववर्ती देशों के समग्र इतिहास का वर्णन अभिप्रेत नही है। यहाँ (आधुनिक बुन्देलखण्ड मे) चेदि, मौर्य, शुङ्ग, वाकाटक (भारशिव, नाग), गुप्त, हूण, हर्षवर्द्धन, कल्चुरि, चन्देल, अफगान, मुगल, गोड़ और अन्त मे बुन्देलो का राज्य रहा है। प्रयत्न करने पर भी पुलिन्दो के राजवंश का क्रमिक इतिहास ज्ञात न हो सका। हमारा प्रयत्न तो यहाँ पुलिन्द-देश के स्थान को पहचनवा देना भर रहा है। वेद, पुराण, अनेक शिलालेखो और ताम्रपत्र-लेखो के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि मुख्य बुन्देल (खण्ड) सुपुरातन पुलिन्द (देश) है। वैदिक काल से लेकर वनस्फर (ई० प्रथम शताब्दी) तक पुलिन्दों के उत्थान-पतन का उल्लेख मिलता है। इसके भी बाद त्रैलोक्यवर्मा के समय बारहवी शताब्दी में आनन्दवर्मा द्वारा इन पर विजय प्राप्त किये जाने का (अजयगढ़) शिलालेख में उल्लेख हुआ है। यह शिलालेख भोजवर्मा के शासन (१३०९ ई० के आसपास) मे लिखा गया था। आश्चर्य है कि इस जाति की पहिचान जनता और इतिहास-वेत्ताओ ने इकदम कैसे भुला दी। आज से छै सौ वर्ष पहले पुलिन्दों का नाम शिलालेख मे उत्कीर्ण कराया जाए और आज हम लोग उन्हें न पहिचाने ! इतिहासज्ञो का कथन है कि 'बुन्देलखण्ड' यह नामकरण छै सौ वर्षा से पुराना नहीं है। जंगली आग की भाँति यह 'बुन्देल' नाम इतनी तीव्रता से फैला कि लोगों को इसके संबन्ध मे सोचने-विचारने का अवसर ही नहीं मिल पाया।

---

१. ब्रह्मा देश की सेना का अध्यक्ष 'महाबुन्देला' था (द्र० डॉ० ईश्वरी-प्रसाद : भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय भाग, १३६ पृष्ठ)।

'बर्मा : ए हैण्डबुक ऑव् प्रैक्टिकल इन्फॉर्मेशन' नामक पुस्तक मे सर् जे० गेअर्ग स्कॉट ने उक्त सेनाध्यक्ष के दो नाम लिखे हैं—महाबन्दुल (१८१,१६२ पृष्ठ) तथा महाबुन्दल (१६० पृष्ठ)।

अतः स्यात् बुन्देला नाम ब्रह्मा में भी प्रचलित था। उसकी परम्परा गवेषणीय है।

गाय और उसके प्रमुख अंग
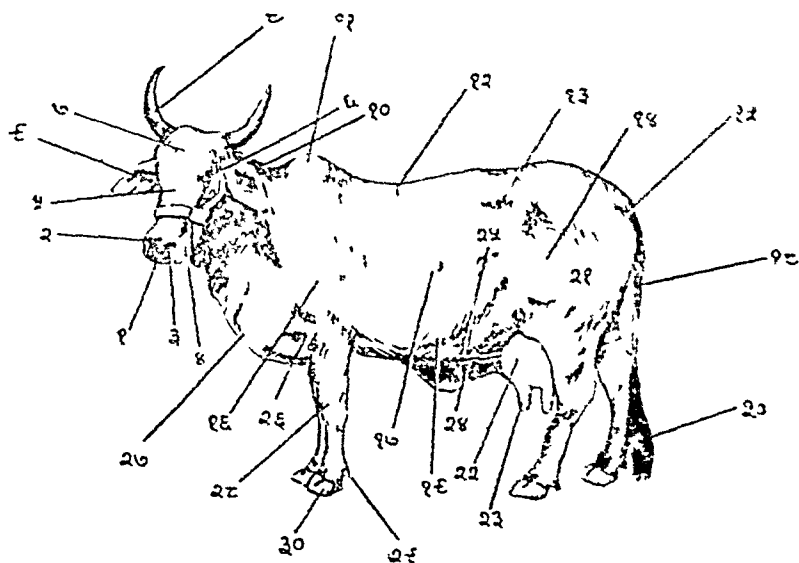
१ मुह २ थूथन ३ नाक या नथुने ४. जबडा ५ चेहरा ६ आखें ७ माथा या मस्तक ८ सींग ९ कान १० गर्दन ११ थुई १२ पीठ १३ कमर १४. कूल्हे १५ पूछ की जड के पास की दोनो तरफ की हड्डी १६ कधे १७. पसलिया १८ पूछ १९ पेट २० चौरी २१ जांघ २२. ऐन (लेवा) २३ थन २४. दुग्ध-नली २५. दुग्ध-शिरा या कूप २६ छाती २७ गलकबल या भालर २८ टाग या पैर २९ नाखून ३० खुर।

बुन्देलखण्ड की प्राचीनता

: भाषावैज्ञानिक ऐतिहासिक एवं भौगोलिक अनुशीलन :

: २ :

केरल-प्रदेश के गाय-बैल

इस प्रदेश मे मद्रास प्रदेश का दक्षिणी-पश्चिमी तटवर्ती इलाका, जो कन्याकुमारी से त्रिवेन्द्रम और कोचीन तक फैला हुआ है, सम्मिलित है। यह सारा इलाका प्राय पहाडी है। यहा की घाटियो तथा समुद्र-तटीय भागो मे प्राय दुमट और चिकनी मिट्टी पाई जाती है। इस इलाके मे वाछित खनिज पदार्थों की प्राय कमी होती है। समुद्र-तट के निकट के इलाके मे सम जलवायु पाया जाता है। तापक्रम करीब ५० से १०० डिग्री फारेनहाइट समझना चाहिए। यहा नमी विशेप रूप से पाई जाती है। प्रतिवर्ष औसतन १०० इच तक वर्षा होती है। यहा अन्य चीजो के अलावा धान की खेती विशेष रूप से होती है। पशुओ को चराई पर्याप्त मात्रा मे मिल जाती है, परन्तु यहा का चारा और घास पौष्टिक नही होता, इसलिए इस इलाके के पशुओ का अस्थिपजर और डील-डौल छोटा होता है और दूध देने तथा कार्य करने की शक्ति कम होती है। इस इलाके मे पास के मद्रास के इलाके के पशुओ से मिलते-जुलते तथा पहाडी और इन पशुओ के मिश्रित पशु होते है। ये पशु मद्रास-प्रदेश के मध्यस्थ भाग के पशुओ की अपेक्षा निकम्मे और छोटे कद के होते है।

यहा पशुओ की उन्नति के लिए कोई विशेष कार्य हुआ हो, ऐसा प्रतीत नही होता। जहा कही थोडा-बहुत प्रयत्न भी किया गया है, वहां उनका कोई विशेष परिणाम नही हुआ है।

इस प्रदेश के रहने वाले प्राय· चावल खानेवाले तथा मासाहारी होते है। अधिकतर वह इलाका पहाडी है, इस कारण यहा न तो अधिक

धारणाएँ और मत-मतान्तर

'बुन्देलखण्ड' नामकरण के संबन्ध मे भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पनाओ का आश्रय लिया जाता है। विचारको के अनुसार उक्त नामकरण ५००–६०० वर्षों से अधिक पुराना नही जान पड़ता। इसकी व्युत्पत्ति—बूंद (<बिन्दु) ल:> बुन्देला+खण्ड=बुन्देलखण्ड बतलायी जाती है[1]। इसके पहले यह देश जिझौति के रूप मे प्रख्यात था[2], पर जिझौति के पूर्व इसकी संज्ञा के विषय मे प्रायः सभी इतिहासकारो ने मौनावलम्बन कर रखा है। कुछ इतिहासकार इस प्रदेश के नाम का सबन्ध 'विन्ध्य' से जोड़ते है[3]। कुछ लोग 'बुन्देली' को

---

१. इस भूभाग के बुन्देलखण्ड नाम की कल्पना ५००–६०० वर्षों से अधिक पुरानी नही जान पडती। जनश्रुति तो यह है कि गहरवार-वशीय काशीश्वर विन्ध्यराज की परम्परा मे उत्पन्न हुए हेमकिरन ने (जिनको इतिहासकारों ने वीर पञ्चम के नाम से अभिहित किया है) भाइयों द्वारा छीने हुए अपने राज्य की प्राप्ति के लिए 'विन्ध्यवासिनी' (अनार्यो की प्रसिद्ध देवी, देखिए 'गउडवहो'—श्लोकसख्या २८५–३८७) को प्रसन्न किया। आत्मोत्सर्ग के लिए उठी हुई करवाल की एक खरोंच मस्तक मे लग गयी और रुधिर का एक सबल बिन्दु पृथिवी पर जा गिरा। फलस्वरूप वीर पञ्चम की सन्तति 'बुदेला' क्षत्रिय [बूँद <(सं० बिन्दु) के प्रभाव से राज्य-प्राप्ति] के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी जनश्रुति का आधार लेकर छत्रसाल के राजकवि गोरेलाल (उपनाम 'लाल') ने 'छत्र-प्रकाश' मे बुदेला नाम की कल्पना की है।

डॉ० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल : बुन्देली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ ३

2 From these accounts of Abu Rihān and Ibn Batuta it is evident that the province of Jajhoti (जझोति) corresponded with the modern district of Bundel Khand (बुन्देलखण्ड).

A. Cunningham : The Ancient Geography of India, p. 481

३. अलबत्ता ऐसा हो सकता है कि इनके पूर्वपुरुषा ने विन्ध्यवासिनी देवी की उपासना की हो। इसी से 'बुदेला' नाम विन्ध्य से बहुत कुछ सबन्ध रखता है।

गोरेलाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का सक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ३

विन्ध्य से सपर्क रखने के कारण *विन्ध्येले> विन्देले>बुन्देले कहलाये।

अस्थिपजर और डीलडौल विकसित नही हो पाता है और वे बहुत कम दूध देते हैं।

गाय और बैल के गुण—गाए बहुत कम दूध देती है। ये मुश्किल से प्रतिदिन १-२ सेर दूध देती है। बैल इस इलाके की स्थिति के अनुसार छोटे कद के होते हुए भी खेती और बैलगाडी का काम मजे से करते है।

उन्नति के उपाय—आरम्भ मे समुचित चुनाव और छटाव की प्रणाली द्वारा इनके प्रजनन का कार्य होना चाहिए। बाद मे यदि इस इलाके की दूध की आवश्यकता पूरी न हो पाये या बैलो से चालक शक्ति पर्याप्त मात्रा मे न मिल सके, तो इनको पूरा करने के लिए पशु-विशेषज्ञो की राय से अधिक दूध देनेवाली या अधिक चालक शक्ति उत्पन्न करनेवाली अथवा दोनो गुण रखनेवाली जाति के पशुओ का आवश्यकतानुसार सयोग कराकर, दोनो गुण पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध किये जा सकते हैं। इस कार्य के लिए थ्री, डागी या निमारी जाति के पशु ठीक हो सकते है।

होता तो इस क्षेत्र को बहुत विस्तीर्ण होना चाहिए था। विन्ध्य पर्वत का विस्तार (उसका अगस्त्य को साष्टाङ्ग प्रणाम करने के कारण फैलना) सुविख्यात है। फिर बघेलखंड के भी बुंदेलखण्ड के नाम से प्रसिद्ध होने मे कोई विरोधी कारण उपस्थित नही है। बघेलखण्ड[1] का भूतपूर्व नामकरण बुंदेलखण्ड अवश्य मिलता; पर ऐसा पाया नही जाता। अतः यह व्युत्पत्ति रायता को राजितक्र (राजि-संस्कृत तक्रम्—मध्यमपदलोपी समास) से व्युत्पन्न न मानकर राज्यक्ता से तथा पुंगी (=बाँसुरी) को पुंगा (< पुङ्गव) से व्युत्पन्न मानने के समान भ्रामक है।

'बघेल' शब्द के सादृश्य पर 'विन्ध्य' से एल + बुंदेल की कल्पना भी संगत नही है। बघेल शब्द का मूल व्याघ्रदेव या (रीवाँ स्टेट गजेटियर और टॉड राजस्थान के अनुसार) व्याघ्रपल्ली > बघेला जागीर निर्णीत है। व्याघ्रदेव वि० सं० १२९० मे कालञ्जर के निकट मड़फा मे आया[2] और अरुनोराज का वंश भी १२९०—९९ तक व्याघ्रपल्ली मे बसने के कारण बघेल कहलाया। निष्कर्षतः बघेलखण्ड की कल्पना विक्रम सं० तेरहवी शताब्दी के अन्त तथा चौदहवी शताब्दी के प्रारम्भिक काल से पूर्व की नही है। बुन्देलखण्ड शब्द की प्रसिद्धि का समय हेमकिरन (पञ्चमसिंह) के राज्यकाल के आस-पास है। पञ्चमसिंह की स्थिति वि० सं० ग्यारहवी शताब्दी का अन्त तथा राज्य बारहवी शताब्दी का आदि काल माना जाता है[3]। फलतः बुंदेलखण्ड नामकरण बघेलखण्ड से एक

---

१. नन्दलाल दे ने अपने (The Geographical Dictionary of Ancient And Mediæval India) ग्रन्थ में पुराणो के अनुसार बघेल-खण्ड (रेवाखण्ड) का पूर्ववर्ती नाम 'कारुष' बतलाया है।

२. बघेलों का कथन है कि वीर धवल के लडके का नाम व्याघ्रदेव था, पर इतिहास मे वीरम मिलता है। यह वीर धवल का ज्येष्ठ पुत्र है। यह बीसल-देव से युद्ध मे हार कर आया होगा। टॉड सा० का कथन है कि व्याघ्रदेव वि० सं० १२०७ मे आया था। इससे यह कलचुरि राजा नरसिंह देव का समकालीन होता है, पर यह इतिहासो से सिद्ध नहीं होता—बुं० का सं० इ० पृष्ठ ९३.

३. वीर और अरिवर्मा ने हेमकिरन से राज्य छीन लिया। इससे उदास होकर इसने काशी के शनि राजा के पुरोहित गजाधर पण्डित की सम्मति से विन्ध्यवासिनी देवी की आराधना की और वैशाख सुदी १४ संवत् ११०५ (तदनुसार ता० २९।८।१०४८ ई० शुक्रवार को वरदान पाया। परन्तु युद्ध में यह भाइयो से हार गया। इसलिए इसने फिर भगवती की पूजा की जिससे

मजबूत और काम करनेवाले होते है, गाये उतनी अच्छी नही होती। वे साधारण दूध देनेवाली होती है।

इस प्रदेश के निवासी केरल-प्रदेश के निवासियो की अपेक्षा कम मासाहारी होते है। यहा के निवासी अधिकतर हिन्दू-धर्म मे विशेष आस्था रखनेवाले होते हे और उनका रहन-सहन सादा होता है। ये दूध, दही के खानेवाले तथा मेहनती होते हे। इनका मुख्य उद्यम खेती-बाडी करना है। लोग पशु-पालन के कार्य मे भी काफी दिलचस्पी रखते है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है इस इलाके के पशु काग्यम नसल के पशुओ के अतिरिक्त अच्छी श्रेणी के पशुओ मे नही आते हे, इसलिए इनकी उन्नति करना अत्यन्त आवश्यक हे। खास करके दूध देने की क्षमता बढानी परमावश्यक है, क्योकि इस इलाके के निवासियो का स्वास्थ्य और काम करने की शक्ति दूध और उससे बने पदार्थो के अधिकाधिक उपयोग पर ही निर्भर है। यहा के पशुओ का विवरण नीचे लिखे अनुसार हे

१ कांग्यम

रहने का स्थान—ये मद्रास प्रदेश के पशुओ मे से है। चूकि यह उस इलाके की प्रमुख नसल है, इसलिए इसका अलग विवरण दिया है।

काग्यम जाति के गाय-बैल कोयम्बटूर के दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्वी भागो मे पाये जाते हे।

वशोत्पत्ति का इतिहास—भारतवर्ष मे १९वी शताब्दी मे प्रमुख नसलोत्पत्ति करनेवाले पालीकोटाई के पट्टीदार ने अपने तरीके से इस नसल को कायम किया है। इन पट्टीदार महाशय का इस जाति के पशुओ पर इतना अधिकार था कि इस जाति के साड सिवा इस पट्टीदार के और कही नही मिलते थे, यहा तक कि मद्रास-सरकार ने भी वशोत्पत्ति के प्रयोग करने के लिए इन्ही से साड प्राप्त किये थे। कुछ विशेषज्ञो की राय है कि इस जाति के पशुओ मे उत्तरी

है। यह जातियाँ देवी की परम भक्त है। अब तो वहाँ (और अन्यत्र भी) ब्राह्मणादि समस्त जातियाँ देवी की उपासक हो गयी है।

काशी जैसे सुसंस्कृत प्रदेश मे गये व्यक्ति का यद्यपि अशिक्षित प्रदेश मे संमान पा सकना असंभव नही है तथापि उस प्रदेश की खूँख्वार जातिया उसे अपने यहाँ आश्रय दें यह तर्कसंगत नही जँचता, किन्तु पञ्चमसिंह देवी का भक्त होकर गया था। फलतः वहाँ की अशिक्षित जातियो की उस पर श्रद्धा हुई होगी और उसकी राज्यविच्युति की कथा सुनकर भोले वनचरो ने उसे सैन्यसंघटन के रूप मे सहायता अवश्य प्रदान की होगी। उस प्रदेश के उस समय चलते हुए नाम मे पञ्चमसिंह द्वारा कुछ न कुछ परिवर्तन हुआ होगा। परिणामतः उक्त प्रदेश (बुन्देलखण्ड) के नाम की कथा पञ्चमसिंह के साथ जुड़ गयी।

'बुन्देल' का मूल—'बोलिन्द'

पञ्चमसिंह के आने से पूर्व इस प्रदेश का नाम था—'बोलिन्द' और इस प्रदेश की लिपि का नाम था—'बोलिन्दी'[1] (ब्राह्मीलिपि का एक भेद)। 'ल' वर्ण का योग वर्णविपर्यय मे पुष्कल सहायता देता है। इसका उच्चारण यदि मूल शब्द मे वर्णक्रमानुसार पहले हो रहा हो तो विकास (वर्णविपर्यय आदि) होने पर इसका प्रायः अन्त मे श्रवण होने लगता है। 'ल' का आनुपूर्वी के अन्त मे स्थान पाने का प्रमुख कारण इसकी श्रुतिमाधुरी है। उदाहरणतः 'लक्ष्मणपुर' शब्द मे से 'म्' 'प्' तथा 'र' के घिस जाने पर शेष रह गया—'लक्षणउ' (क्ष > ख, ण > न) > लखनऊ। आज अधिकाश लोग इस लखनऊ के 'ल' को 'न' के स्थान पर और 'न' को 'ल' के स्थान पर रखकर नखलऊ बोलते है। यह कार्य जानबूझ कर नही किया जाता किन्तु मुखसुखार्थ 'ल', का उच्चारण परवर्ती 'न' के स्थान पर स्वभावतः ही हो जाता है। इसका कारण, मुख मे 'न' बोलने के लिए जीभ नीचे (दाँतो) की ओर लगानी पड़ती है जबकि 'ल' उच्चारण-प्रसङ्ग मे उसे ऊपर (मूर्धा) की ओर ले जाना पड़ता है। नीचे सोयी हुई जीभ को ऊपर ले जाकर पुन. नीचे लाने की अपेक्षा नीचे से होते हुए ऊपर की ओर ले जाने मे सुविधा होती है। इस प्रकार का उच्चारण सर्वसाधारण (अशिक्षित) जनो के द्वारा अधिक होता है। (भाषा-विकास मे यही लोग मुख्यतः सहायक होते है।) इसी प्रकार बच्चे जलेबी की जगह जबेली कहने में अधिक आनन्द लेते है।

---

१. 'मारेसरीलिवी दामिलिवी बोलिंदीलिवी'—समराइच्चकहा ८५।

बुन्देल <'बोलिन्द' का मूल—'पुलिन्द'

पुलिन्द देश का नाम अशोक के राज्य मे अविकृत रूप में प्रयुक्त होता रहा। उनके धर्मलेखो मे से त्रयोदश शहवाजगढ़ी शिलालेख[1] मे पुलिन्द देश का नाम आया है। कालिदास ने भी रघुवंश १६।१६ और १६।३२ मं पुलिन्द जाति का उल्लेख किया है पर वह व्यावहारिक दृष्टि से अशोक के शिलालेख जितना महत्त्वपूर्ण नही हैं। अशोक के अनन्तर गुप्तकाल तक इसका छिटपुट प्रयोग मिला है। तदनन्तर छै सौ वर्षो (५०० ई० से ११०० ई०) में उक्त शब्द विकास को प्राप्त हुआ। यही समय भाषाओ (प्राकृत-अपभ्रश-हिन्दी) के विकास के सूत्रपात तथा संवर्द्धन का आधार है।

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार विश्वामित्र के ज्येष्ठ पचास पुत्रो ने शुनःशेप को अपने वडे भाई के रूप मे स्वीकार नही किया था। अतः रुष्ट विश्वामित्र से अभिशप्त वे सब अन्ध्र पुण्ड्र शवर पुलिन्द और मूतिव नामक दस्यु (=शत्रु अथवा म्लेच्छ) हो गये[2]। वेद के इस प्रमाण से सिद्ध है कि पुलिन्द जाति अति पुरातन सस्कारहीन क्षत्रिय (जाति) थी। यह पूर्व मे सिलहट तथा कामरूप से उत्तर की ओर बिखर गयी (तारातन्त्र)। नन्दलाल दे के अनुसार इसकी 'पोदस्' नामक एक शाखा बगाल मे रहती थी[3]। वस्तुतः वह शाखा पौण्ड्र जाति की है पुलिन्द की नही। 'पौण्ड्राः' का अपभ्रंश पोदा हो गया है।

---

१. भोजपितिनिकेषु अध्र-पुलिंदेषु सवत्र देवन प्रियस ध्रमनुशस्ति अनुवटति (सस्कृत—भोजपितिनिकेपु आन्ध्रपुलिन्देषु सर्वत्र देवाना प्रियस्य धर्मानुशिष्टिम् अनुवर्तन्ते)—जनार्दनभट्ट एम्० ए० : अशोक के धर्मलेख, पृष्ठ २६०। पुलि[दे]षु—Epigraphia Indica, Vol. II, p. 463.

२. 'तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः पञ्चाशदेव ज्यायासो मधुच्छन्दसः पञ्चाशत् कनीयांस इति। तद् ये ज्यायांसो न न कुशलं मेनिरे।ताननुव्याजहारान्तान् वः प्रजान् भक्षीष्टेति त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठा इति'—ऐत्रा. ७।१८.

३. Nundo Lal Dey : The Geographical Dictionary of Ancient And Mediæval India

गाय और बैल के गुण—गायो का दूध कम होता है। चुनंता गायें ५ सेर से ६ मेर तक दूध देनेवाली पाई जाती है। वहुत अच्छी गाय ८-१० सेर दूध देती भी देखी गई है। ये पहले-पहल लगभग ४॥-५ वर्ष मे ब्याती है, वाद मे १-१॥ वर्ष मे। बैल वोझ खीचनेवाला, फुर्तीला, मजबूत और देर तक काम करनेवाला होता है। वह १० से १२ वर्ष तक काम कर सकता है। छोटे कद का होने के कारण इसके पालने मे वहुत व्यय नही होता।

उन्नति के उपाय—इस नसल के पशुओ का दूमरी भिन्न नसल के पशुओ से सयोग कराना ठीक नही होगा। दूध वढाने के लिए तथा किसी अन्य गुण का इस नसल मे प्रवेश करने के लिए, विजातीय सयोग कराने से इस नसल को, जोकि आज प्रतिष्ठित या भली प्रकार स्थापित नसल है, हानि हो सकती है। इसलिए इस जाति के पशुओ के अच्छे चुने हुए वाछित गुणवाले पशुओ के आपस के सयोग से और वुद्धि-युक्त चुनाव और छटाव द्वारा ही पशु-उन्नति करनी चाहिए।

२. बरगुर

रहने का स्थान—ये पशु प्राय बरगुर पहाडी के इलाके मे कोयम्बटूर के जिले मे मिलते है।

वशोत्पत्ति का इतिहास—ये पशु आलमवाडी और अमृतमहल जाति के पशुओ से प्रभावित है और मिश्रित पशुओ की श्रेणी मे आते हैं, परन्तु अब वहुत दिनो तक एक ही प्रकार का प्रजनन-कार्य और भिन्न जाति के पशुओ से मयोग न होने के कारण इन पशुओ मे इनके गुण प्रतिष्ठित होगये हैं।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—मैसूर जाति के पशुओ से मिलते-जुलते और उनके प्रतिरूप ये पशु मझले छोटे कद के, हल्के और गठीले वदन के, बडे तेज मिजाज के और विदकनेवाले होते है। इनमे गाय का वजन लगभग ५५०-६०० पौड बैल का ६००-६५० पौड और

अशान्त युद्धों के वातावरण भाषा मे उथल-पुथल मचा देते है। अत शान्त स्थानो के भाषा-विकास की अपेक्षा युद्ध-क्षेत्र का भाषा-विकास अत्यन्त भिन्न होता है। हडबडाया व्यक्ति स्थिरचित्त व्यक्ति की अपेक्षा अधिक अटपटा बोलेगा। अतः 'पुलिन्दानक' शब्द का विकास 'पुलिन्द' के समान नही हुआ। दूसरी बात, वही शब्द यदि कुछ लम्बा हो जाए तो भी विकास भिन्न प्रकार से होगा। पुलिन्दानक (आज ?) रतलाम-क्षेत्र मे 'पल्दूना'[1] नाम से प्रसिद्ध है। पकारोत्तरवर्ती उकार उचटकर दकार का सहारा बन गया। पुलिन्द के पकार मे कुछ भी विकार नही आ पाया।

'पल्दूना'<पुलिन्दानक मे केवल 'उ' मात्रा का स्थानान्तर और अन्तिम 'क' वर्ण का लोप हुआ है। 'बुन्देल'<पुलिन्द शब्द मे विशेष परिवर्तन हुआ है। इस प्रकार के विकास-वैविध्य विरल[2] नही है। बुन्देलखण्ड मे नंगे पैर के लिए एक शब्द है—उपनए या उपनव (<अ + उपानह्)। इसी शब्द के स्थान पर एक दूसरा विकास भी दर्शनीय है—उबेना (<अ + उपानह्)। द्वितीय विकास मे पकार सुरक्षित नही रह सका किन्तु बकार मे परिवर्तित हो गया। हमारे मतानुसार ई० सातवी शताब्दी के पुलिन्दानक>पल्दूना-विकास के अनन्तर (कम-से-कम दो सौ वर्ष पश्चात्) पुलिन्द>बुन्देल शब्द विकसित हुआ।

नागोद स्टेट से प्राप्त महाराज हस्ती का दान-पत्र[3] पुलिन्द देश की स्थिति

---

१. The दीवान of Rutlam identified नवग्राम with>नोगावा (नोगाँव, on the Indian Atlas sheet No 36, N E [1895]), वराहकोटक with>भारोडा and पुलिन्दानक with>पल्दूना।

Epigraphia Indica, vol. VIII, p. 181

२. वाजपेयी जी>बॉस बेइल।

३. नमो महादेवाय ॥ स्वस्त्यष्टनवत्यु [त्तरेऽब्दशते गुप्त-नृप-राज्य-भुक्तौ श्री] मति प्रवर्द्धमाने महाश्वयुज-संवत्सरे [माघ मास पक्ष ...] मस्या संवत्सर-मास-दिवसपूर्व्वायां नृ [पति-परिव्राजक-कुलोत्पन्नेन महाराज-] देवाढ्य-प्रनप्त्रा महाराज-श्री-प्रभञ्जन [नप्त्रा महाराज-श्रीदामोदर-सुतेन गो-स-] हस्त-हस्त्यश्व-हिरण्यानेक-भूमि-प्रदे [न] [गुरु पितृ-मातृ-पूजा-तत्परेणात्यन्त देव-] ब्राह्मणभक्तेनानेक-समर-शत-विज [यिना स्ववंशामोदकरेण महा-] राज-श्री-] हस्तिना पुलिन्द-राज-राष्ट्रे नवग्रामक (को ?) [नाम ग्रामः पूर्व्वाघाट-परिच्छेद-मर्यादया सोद्र-] ङ्ग. सोपरिकराचाट-भट-प्रावेश्यो [मातां-

उन्नति के उपाय—इस जाति की गाय कम दूध देनेवाली होती है। यदि उन्हे हरा चारा भली प्रकार खिलाया जाय, तो उनका दूध बढ सकता है। वशोन्नति का कार्य समुचित चुनाव और छटाव द्वारा करना चाहिए। यदि इससे इनके दूध देने की शक्ति पर्याप्त मात्रा मे न बढ सके तो चुनैता, अमृतमहल या काग्यम जाति की अधिक दूध देने वाली गायो के नर (साड) से इनका सयोग कराकर इनमे दूध देने का गुण बढाया जा सकता है।

३ आलमवाड़ी

रहने का स्थान—ये पशु मद्रास प्रान्त मे सेलम और कोयम्बटूर जिलो के मैसूर मे लगे हुए उत्तरी भागो मे पाये जाते है। प्राय जगलो मे पाले जाते है।

वशोत्पत्ति का इतिहास—ये कोई खास नसल के पशु नही है, आसपास के इलाके के पशुओ के मिश्रण है। हल्लीकर के समान अमृत-महल नसल के पशुओ से विशेष रूप से प्रभावित है। अब इनके गुण इनमे काफी प्रतिष्ठित होगये है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु मझले डील-डौल के और कद मे ४॥-५ फुट ऊचे होते है। इनमे गाय का वजन लगभग ६००-७०० पौड, बैल का ७००-७५० पौड और साड का ७५०-८०० पौड तक होता है। इनकी खाल पतली और रोआ सफेद रग का होता है। इनका रग सफेद, लोहिया, भूरा और हल्का गेरुआ तथा गहरा गेरुआ होता है। साड भूरे और गहरे भूरे रग के होते है। कमर सीधी, पेट साधारण तथा दोनो तरफ फैला हुआ और छाती काफी विकसित होती है। सिर मैसूर नसल के पशुओ के सदृश होता है। माथा चौडा, सीग के पास का हिस्सा कम चौडा होता है और मे आरम्भ से अन्त तक बीच दबा हुआ होता है। इनके सीग २-२॥ फुट तक लबे तथा अमृतमहल पशुओ के सीगो की तरह पीछे को मुडे हुए होते है और सिरे पर नोकीले

पुलिन्द जाति से संबद्ध नही माना जा सकता। हाँ, इस प्रदेश का पुलिन्द देश होना सुनिश्चित है।

बुन्देलखण्ड के मूलनिवासी और शासक पुलिन्द थे। चन्देल आदि बाद मे आये। कनिंघम के ग्रन्थानुसार 'चन्देलो का आदिपुरुष चन्द्रात्रेय चन्द्रमा का पुत्र था। वह काशिराज के पुरोहित की पुत्री हेमावती से उत्पन्न हुआ था। उसने कालञ्जर खजुराहो और महोवा को राजधानी बनाया[1]।' शिलालेखो मे चन्द्रात्रेय का उल्लेख मुनि रूप मे हुआ है। वह मुनि अत्रि का पौत्र था[2]। इतिहासकारो

---

1. According to the legend the chandelas are sprung from Hemā Devī daughtor of Hema Rāj the Brahman purohit of Indra jit Gahirawār rājā of Benaras. Hemāvatī was very beautiful and one day when she went to bathe in the Rāti Tālāb she was seen and embraced by chandrama, the god of moon. He said your son will be Lord of the earth, your son will be born on the bank of the Karṇavatī river. Then take him to Khajuray He will possess the phelosopher's stone, and will turn iron into gold. On the hill Kalinjar he will build a fort, named Chandra Varma The date of this event is about A. D. 800.

A. Cunningham : The Ancient Geography of India, P. 487.

Lastly he went to Mahotsava or Mahoba, which he made his capital p 488.

२. मध्ये तेषां प्रहततमसां मानसानां मुनीनां
श्रीमानत्रिः प्रथितमहिमा नेत्रपात्रे प्रसूतम् ।
यस्य ज्योतिःपटलजटिलं मण्डलं वन्द्यमिन्दो-
श्चन्द्रात्रेयः समजनि मुनिस्तस्य पुत्रः पवित्रः ॥ ६ ।
कालेनेह महावंशे प्रशंसाप्रांशुरंशुमान् ।
मुक्तामणिरिव श्रीमान् नन्नुकोऽभूत्महीपतिः ॥ १४ ।
तस्मादुदारकीर्तेरजनि जनानन्दसुन्दरः श्रीमान् ।
तनयो विनयनिधानं वाक्पतिरिव वाक्पतिः क्षितिपः ॥ १६ ।

Stone inscription of धंगदेव of the year 1059 (Epigraphia Indica, p. 140)

के साथ इन पशुओ मे अधिक दूध देने की क्षमता, बिना बैलो की उपयोगिता को घटाये हुए, पैदा हो सके। भविष्य मे इनकी सतति यदि अच्छी होती है तो उनके आधार पर पशु-प्रजनन का कार्य करने मे उनकी उन्नति हो सकती है।

वर्णित इस महानदी को बरार के दक्षिण-पूर्वी कोण पर स्थित पर्वतो से उद्भूत उड़ीसा की महानदी[1] से अभिन्न मानते है। यह सिहोआ को पार कर बस्तर से गुजरती हुई बिलासपुर की दक्षिणी सीमा पर पहुँचती है[2]। फलतः पुलस्त्यवशी गोडो के निवास गोड़वाने (छत्तीसगढ़) को पुलिन्ददेश बतलाया जाता है।[3]

उपर्युक्त मत समीचीन नही है क्योकि उडीसा-बिलासपुर की महानदी कालञ्जर से दक्षिण मे पड़ती है। वामनपुराण के अनुसार उसे उत्तर दिशा मे होना चाहिए। कालञ्जर से उत्तर मे गङ्गा नदी बहती है और उसका एक नाम महानदी भी है[4]। वामनपुराण के अनुसार 'सैकड़ो बार अश्वमेध यज्ञ और

इत्येवमुक्त्वा सुरराट् पुलिन्दान् विमुक्तपापोऽमरसिद्धयक्षैः।
सपूज्यमानोऽनुजगाम चाश्रमं मातुस्तदा धर्मनिवासमीड्यम् ॥२६।

वामनपुराण ७६/१४—२६

१. नदी तत्र महापुण्या विन्ध्यपादविनिर्गता।
चित्रोत्पलेति विख्याता सर्वपापहरा शुभा ॥
चित्रोत्पला महानदी　　।
—पुरुषोत्तमक्षेत्रान्तर्गतकटकस्योत्तरदेशस्थनदीविशेषा—शब्दकल्पद्रुम।

२. The योगिनीतन्त्र mentions it (2, 5, 139-140). The महानदी is the largest river in orissa, which rises from the hills at the south-east corner of Berar. It flows Past sihoa and Passes through बस्तर in the central Provinces. It reaches the southern border of the district of बिलासपुर. It is fed by five tributaries. It follows a south-easterly course and flows Past the town of Cuttack (कटक).

B. C. Law　Historical Geography of Ancient India.

३. रॉबर्ट शेफर 'Ethnography of Ancient India' नामक पुस्तक (पृष्ठ ६२) मे पुलिन्दो को गोडी जाति का बतलाते हैं। १४० पेज पर वह लिखते हैं—'Foreign in Jain literature, where it occures in list with other Dravidian Peoples. Gondi.

४. प्रविवेश त्रिधा प्राच्यां प्लावयन्ती महानदी।
भगीरथरथस्यानुस्रोतसैकेन　दक्षिणाम् ॥१२।
तथैव पश्चिमे पादे विपुले सा महानदी।
स्वर (सुच) क्षुरिति विख्याता वैभ्राज साऽचलं ययौ ॥१३।
शीतोदं च मरुत्तरगात् प्लावयन्ती महानदी।
तस्मात् क्रमेण चाद्रोणा शिखरेषु निपत्य सा ॥१४।

अपेक्षा बैल बहुत अच्छे होते है।

यहा के निवासियो का रहन-सहन, स्वभाव आदि साधारण हैं। ये लोग दूध तथा दूध से बने पदार्थो के बहुत शौकीन होते है। इनका मुख्य उद्यम खेती-बाडी है। ये लोग पशुओ की देखभाल और खिलाई-पिलाई अच्छी करते है। इस इलाके के बैल खूब काम करनेवाले होते है, परन्तु गाये अपेक्षाकृत बहुत कम दूध देती है। इसलिए यहा पशु-प्रजनन का कार्य ऐसी दृष्टि से होना चाहिए, जिससे गायो की दूध देने की क्षमता बढे और बैलो की कार्य करने की शक्ति न घटे। यहा की जलवायु, चराई, खेती तथा यहा के निवासियो के पशु-पालन के शौक को देखते हुए पशुओ की उन्नति का कार्य बखूबी हो सकता है।

१ अमृतमहल

रहने का स्थान—इस नसल के पशु प्राय दक्षिण भारत के मैसूर-प्रदेश मे तथा उसके आसपास पाये जाते है।

वशोत्पत्ति का इतिहास—टीपू सुल्तान को अपने तोपखाने को शीघ्रता से एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए तगडे और तेज चलनेवाले बैलो की जरूरत थी, उसे पूरा करने के लिए उसने पशु-प्रजनन का कार्य कराया। इसमे उसे सफलता मिली। इसके फलस्वरूप अमृतमहल नसल अस्तित्व मे आई।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—इस नसल के पशु बडे हट्टे-कट्टे, मजबूत, चौरस, लम्बे और मझले कदवालो से कुछ ऊचे कद के होते है। इनमे गाय का वजन ७०० पौड, बैल का ८०० पौड और साड का ८५० पौड तक होता है। इनकी खाल और रोआ बीच के दर्जे का होता है। गाय अधिकतर सफेद रग की होती है और बैल तथा साड सफेद और भूरे दोनो रग के होते है। सिर, गर्दन और थुई के पास भूरा या काला रग होता है। कमर आम तौर से सीधी और साधारण चौडी होती है। पेट साधारण तथा दोनो तरफ फैला हुआ होता है।

कालञ्जर

उक्त कालञ्जर पर्वत बांदा से तीस मील पूर्व की ओर अवस्थित है। अजयगढ़ से ठीक दक्षिण-पश्चिम मे यह बना है। यह पर्वत संसार के नौ ऊखलो मे से एक ऊखल माना जाता है[1]। इस पहाड़ पर एक वहुत पुराना किला बना है। प्रसिद्ध इतिहासलेखक फरिस्ता लिखता है कि कालञ्जर का गढ़ केदारनाथ नामक व्यक्ति ने ईसा की प्रथम शताब्दी में वनवाया था। महमूद गजनवी ने सन् १०२२ ई० मे इस गढ़ को घेरा था। उस समय यहाँ का राजा नंद (गण्ड) था जिसने एक वर्ष पहले कन्नौज पर चढ़ायी की थी[2]।

मत्स्यपुराण मे कालञ्जर को देश[3] तथा (महाकाल शिव) वन[4] बताया गया है। विष्णुपुराण में मेरुपर्वत के मूल मे कालञ्जर पर्वत की स्थिति वतायी गयी है। उसके पास शङ्खकूट ऋषभ हंस और नाग नामक पर्वतों की सत्ता वर्णित है[5]। भागवतपुराण मे भी विष्णुपुराण की तरह कालञ्जर को मेरु की कर्णिका

---

१. रेणुक-सूकर-काशी-काली-काल-वटेश्वराः ।
कालञ्जर-महाकालावूखला नव कीर्तिताः ॥
—Archæological survey, Vol. XXI, P. 22.

कालञ्जर (hill fort)-Epigraphia Indica, Vol. I, P. 123, 124, 133, 134, 218, 220, 331, and 336.

२. हिन्दीशब्दसागर, 'but his true name was Gaṇḍ'—Archæological Survey, Vol XXI, P. 22.

३. 'कालञ्जरान् विकर्णाश्च कुशिकान् स्वर्गभौमकान्'—मत्स्यपुराण १२१।५४

४. 'अमरं च महाकालं तथा कायावरोहणम्'—मत्स्यपुराण १८१।२६
कालञ्जरवनं चैव शङ्कुकर्णं स्थलेश्वरम् ।
एतानि च पवित्राणि सान्निध्यानि मम प्रिये ॥ मत्स्यपुराण १८१।२७

५. मेरोरन्तराङ्गेषु जठरादिष्ववस्थिताः ।
शङ्खकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापरः ।
कालञ्जराद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः ॥ विष्णुपुराण २।२।३०
(गीताप्रेस सं० २।२।२९)

नही होगा। यह वही बाँदा के पास का पौलिन्द कालञ्जर है[1]। केवल विष्णुपुराण एवं श्रीमद्भागवत को छोड़कर किसी भी पुराण मे कालञ्जर हिमालय (मेरु) पर्वत पर अवस्थित नही बताया गया है। उक्त दोनो पुराणो मे भी वर्णित

---

१. तत्रैव हिमवत्पृष्ठे त्वट्टहासो महागिरिः।
भविष्यति महातेजाः सिद्धचारणसेवितः ॥१६२।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः।
युक्तात्मानो महासत्त्वा ध्यानिनो नियतव्रताः ॥१६३।
सुमन्तुर्बर्वरिर्विद्वान् सुबन्धुः कुशिकन्धरः।
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गता॥१६४।
एकविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमेण तु।
वाचस्पतिः स्मृतो व्यासो यदा स ऋषिसत्तमः ॥१६५।
तदाप्यहं भविष्यामि दारुको नाम नामतः।
तस्माद् भविष्यते पुण्यं देवदारुवनं महत् ॥१६६।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः।
प्लक्षो दाक्षायणिश्चैव केतुमाली वकस्तथा ॥१६७।
योगात्मानो महात्मानो नियता ह्यूर्ध्वरेतसः।
परम योगमास्थाय रुद्रं प्राप्तास्तदानघाः ॥१६८।
द्वाविंशे परिवर्ते तु व्यासः शुक्लायनो यदा।
तदाप्यह भविष्यामि वाराणस्यां महामुनिः ॥१६९।
नाम्ना वै लाङ्गली भीमो यत्र देवाः सवासवाः।
द्रक्ष्यन्ति मा कलौ तस्मिन्नवतीर्णं हलायुधम् ॥२००।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुधार्मिकाः।
तुल्यार्चिर्मधुपिङ्गाक्षः श्वेतकेतुस्तथैव च ॥२०१।
तेऽपि माहेश्वरं योगं प्राप्य ध्यानपरायणाः।
विरजा ब्रह्मभूयिष्ठा रुद्रलोकाय संस्थिताः ॥२०२।
परिवर्ते त्रयोविंशे तृणविन्दुर्यदा मुनिः।
व्यासो भविष्यति ब्रह्म तदाहं भविता पुनः।
श्वेतो नाम महाकायो मुनिपुत्रः सुधार्मिकः ॥२०३।
तत्र कालं जरिष्यामि तदा गिरिवरोत्तमे।
तेन कालंजरो नाम भविष्यति स पर्वतः ॥२०४।

—वायुपुराण २३।१६२—२०४

नसल के सयोग के करना चाहिए। ऐसा करने से ये उन्नति कर जायगे। ठीक कद और अच्छे वाछित गुणवाली काग्यम नसल की गायो और अमृतमहल के साडो का सयोग कराने से जो उन्नत सतति उत्पन्न होगी, उसके आधार पर भविष्य मे पशु-प्रजनन का कार्य करने से अच्छे पशु मिल सकते है।

२ हल्लीकर

रहने का स्थान—प्राय टमकर, हसन और मैसूर-प्रदेश के मैसूर जिले मे पाये जाते हे। ये मैसूर-प्रदेश और कृष्णा नदी-घाटी के बीच मे भी मिलते है।

वशोत्पत्ति का इतिहास—ऐसा मालूम होता हे कि इनकी नसलोत्पत्ति के कार्य मे दूध बढाने का प्रयत्न किया गया है। मैसूर नसल के पशु इनके प्रतिरूप हे। कृष्णा नदी-घाटी के पशुओ का कुछ असर सीमा पर के पशुओ पर पडा है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—हल्लीकर जाति के पशु मैसूर नसल के पशुओ के प्रतिरूप होते हे और उन्ही की तरह उतने तो नही, परन्तु कुछ कम हट्टे-कट्टे, मजबूत, चौरस, लम्बे और मझले कद से कुछ बडे कद के होते हे। इनमे गाय का वजन लगभग ७०० पौड, बैल का ७५०-८०० पौड और साड का ८०० पौड तक होता है। इनकी खाल और रोआ बीच के दर्जे से कुछ बारीक होता है। इनका रग प्राय सफेद होता हे। कमर साधारण, अमृतमहल के पशुओ से मिलती-जुलती होती है। पेट साधारण फैला हुआ, छाती मझले दर्जे की, सिर उभरा हुआ होता है। माथा कुछ चौडा परन्तु बीच मे चिरा हुआ-जैसा होता है—यह इस जाति के पशु की एक विशेषता है। चेहरा लम्बा, आख छोटी, नाक कम विकसित, नथने साधारण परन्तु जरा उभरे हुए होते है। कान बीच के दर्जे के कम लटकवा होते है। गर्दन विशेष लम्बी नही होती, न झालर विशेष लटकवा होते है। थुई अमृतमहल की भाति

कालञ्जर मे नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर बना है[1]। यहाँ के किले में कोट-तीर्थं नामक तीर्थयात्रा-स्थान दर्शनीय है। इस किले के निर्माण का संवन्ध चन्देल वंश के प्रवर्तक चन्द्रवर्मा से जोड़ा जाता है। इस किले मे कालभैरव की अट्ठारह हाथ वाली एक दीर्घकाय प्रतिमा प्रतिष्ठित है। यह खोपड़ियो की माला और सांपो के वाजूवन्द पहने है। हिरण्यविन्दु नामक तीर्थस्थान भी यही स्थित है[2]। कालञ्जर की पहाडी रविचित्र के नाम से भी प्रसिद्ध है[3]।

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार एक ब्राह्मण ने किसी कुत्ते का लाठी से पीटा। कुत्ते के परामर्श से श्री रामचन्द्र ने उस ब्राह्मण को कालञ्जर मे कुलपति (मठाधीश) पद पर अभिषिक्त कर दिया[4]। यह प्रसङ्ग कालञ्जर के वड़े तीर्थ स्थान होने की सूचना देता है। हिमालय के कालञ्जर के संवन्ध मे इस प्रकार का कोई प्रमाण नही मिलता।

महाभारत वनपर्व मे तीर्थों के वर्णन-प्रसङ्ग के अनुसार प्रयाग के अव्यवहित अनन्तर कालञ्जर का वर्णन किया गया है और इसी के आसपास चित्रकूट भी वर्णित हुआ है—'लोकविश्रुत कालञ्जर पर्वत पर देवह्रद मे स्नान करने से सहस्र गोदान का पुण्य प्राप्त होता है। इसके अनन्तर गिरिवरश्रेष्ठ चित्रकूट में सर्व-पापप्रणाशिनी मन्दाकिनी मे स्नान करना चाहिए[5]।'

---

१. 'कालञ्जरे नीलकण्ठम्'—वामनपुराण, अध्याय ६०, श्लोक २७

२. महाभारत, वनपर्व, अध्याय ८७

३. J. A. S. B. XVII (1848) P. 171

४. प्रतिज्ञातं त्वया वीर ! किं करोमीति विश्रुतम् ।
प्रयच्छ ब्राह्मणस्यास्य कौलपत्य नराधिप ॥३८॥
कालञ्जरे महाराज ! कौलपत्यं प्रदीयताम् ।
एतच्छ्रुत्वा तु रामेण कौलपत्येऽभिषेचितः ॥३९॥
—वाल्मीकीय रामायण ७।प्रक्षिप्त सर्ग २

५. मेधाविकं समासाद्य पितॄन् देवांश्च तर्पयेत् ।
अग्निष्टोममवाप्नोति स्मृति मेधां च विन्दति ॥५५॥
अत्र कालञ्जरं नाम पर्वतं लोकविश्रुतम् ।
तत्र देवह्रदे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ॥५६॥
यो स्नातः स्नापयेत् तत्र गिरौ कालञ्जरे नृप ।
स्वर्गलोके महीयेत नरो नात्स्यत्र संशयः ॥५७॥

ओरछा, टीकमगढ़, दतिया आदि स्थान बुन्देलखण्ड के मुख्य अवयव है। बुन्देलखण्ड का ताना-बाना इन्ही स्थानो के चारो ओर बुना है।

किसी भी राज्य को चलाने वाला सूत्रधार या तो राज्य के केन्द्र मे रहता है या फिर ऐसे तीर्थस्थान मे राजधानी बनाता है जहाँ जनता भक्तिप्रवण होकर स्वभावत: आकृष्ट होती हुई चली जाए। पूर्वोक्त स्थानो की किलेबन्दी का अपना विशिष्ट महत्त्व होते हुए भी ईश्वरप्रदत्त प्राकृतिक दुर्गम पर्वतो की किलेबन्दी इस प्रदेश की अधिकतम सरक्षक सिद्ध हुई है। (कालञ्जर तीर्थस्थान होने के अतिरिक्त सीमा पर अवस्थित रहने के कारण अधिकांशतः राजधानी बनता रहा है।) यह गहन पर्वतश्रृङ्खला चित्रकूट से लेकर होशंगाबाद तक चली गयी है। छत्रसाल के राज्यकाल मे बुन्देलखण्ड का सीमावर्णन इस प्रकार किया गया है—

इत यमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस।
छत्रसाल सो लरन की रही न काहू हौस॥

बुन्देलखण्ड की उत्तरी सीमा पर यमुना, दक्षिणी पर नर्मदा, पूर्वी पर टौंस (<तमसा) तथा पश्चिमी पर चम्बल (<चर्मण्वती) नामक नदियाँ बहती है।

उपर्युक्त पर्वतारण्यानियो से परिवेष्टित स्थान बुन्देलखण्ड का हृदय इसलिए कहे जाते है क्योकि यह देशी रजवाड़े बुन्देलो की गौरवगाथा गा रहे है। अंग्रेजी राज्य मे भी इन्होने अपना प्रभुत्व खोया नही था। सागर जिले से लेकर [बीच में ग्वालियर राज्य का कुछ (भिलसा, पठारी, त्योंदा-रसूलपुर आदि) अंश छोड़कर] होशंगाबाद तक का समग्र प्रदेश अँग्रेजो ने अपने कब्जे मे ले लिया था। वस्तुत: बुन्देलखण्ड का यह अधिकृत प्रदेश मुख्यत: दण्डक एवं दशार्ण था। भिलसा (<भैलस्वामिन्,[१] विदिशा) के आसपास का क्षेत्र दशार्ण के अन्तर्गत माना जाता था[२]। इस प्रदेश का यह नामकरण दशार्णा (>धसान) नदी के

---

१. Epigraphia Indica, Vol. I, P. 124.

२. (क) It is generally identified with वेदिसा or भिल्सा region in the Central Provinces. The दशार्णाः occupied a site on the दशार्ण river (modern धसान) near Saugor that flows through बुन्देलखण्ड rising in भोपाल and emptying in the वेतवा (<वेत्रवती). (ख)—विदिशा the chief city of दशार्ण was a halting place on the दक्षिणापथ.

—B. C. Law : Historical Geography of Ancient India.

: ५ :

आंध्र-प्रदेश के गाय-बैल

इस प्रदेश मे मद्रास से ऊपर समुद्र के किनारे-किनारे उडीसा तक, मध्य-प्रदेश मे गोदावरी नदी तथा छिंदवाडा और बरार तक, उत्तर-पश्चिम मे बम्बई-प्रदेश से सटा हुआ इलाका और वहा से बम्बई का पूर्वी भाग, शोलापुर होते हुए मैसूर तक तथा आंध्र से लगा हुआ मैसूर-प्रदेश का उत्तरी-पूर्वी भाग का इलाका सम्मिलित है। इस प्रदेश मे उत्तरी पनेर, कृष्णा, गोदावरी और तुगभद्रा नदी, जो कर्नूर के पास कृष्णा नदी मे गिरती है, बहती है। समुद्र-तट तथा नदियो के आसपास की भूमि उपजाऊ है। यहा जहा-तहा पथरीली और बलुई भूमि भी पाई जाती है। इस प्रदेश मे वाछित खनिज पदार्थो की कुछ कम कमी है।

यहा गर्मियो मे बहुत गर्मी (११२° फा०) और सर्दियो मे कम सर्दी (५७° फा०) होती है। यहा खुश्क इलाको को छोडकर प्रतिवर्ष प्राय वर्षा ४०-५० इच होती है। समुद्र-तट के भागो मे तो इतनी अधिक वर्षा होती है कि बाढ के कारण प्रति-वर्ष फसले खराब हो जाती है। इस प्रदेश के समुद्रतटीय इलाके मे वर्षा ऋतु मे दक्षिणी-पश्चिमी मानसूनो के अलावा जाडो मे भी उत्तरी-पूर्वी मानसूनो से वर्षा होती है, जिससे काफी लाभ होता है।

यहा नदियो की घाटियो मे और मैदानी इलाको मे खास करके समुद्र-तटीय इलाके नैलोर, बैजवाडा और उसके आसपास के क्षेत्र मे खूब अच्छी खेती होती है। यहा चरागाह विशेष नही है। पशुओ को प्राय. बोई हुई फसलो पर ही निर्भर रहना पडता है। गर्मियो मे इस प्रदेश के खुश्क इलाके मे कुछ भी चरने को नही मिलता। अलबत्ता कृष्णा-घाटी

दण्डक और द्रुह्य

दशार्ण एवं बुन्देलखण्ड (पूर्वोक्त रजवाड़ो) के बीच दण्डक जनपद आबाद था। दशार्ण की भाँति आज यह भी बुन्देलखण्ड मे विलीन हो गया। ब्रह्माण्ड और मत्स्यपुराण मे दण्डक जनपद का वर्णन मिलता है[1]। दण्डकारण्य ही उक्त जनपद था। यद्यपि इसका विस्तार बहुत अधिक है तथापि दण्डक जाति बुन्देलखण्ड के आसपास ही मिलती है। इसका उल्लेख पुलिन्द जनपद के साथ मिलता है। दण्डक जनपद मे रहने के कारण उस जाति का नाम दण्डक>डाँग>डाँगी> दाँगी पड़ गया। यह डाँगी या दाँगी नामक क्षत्रियजाति आज भी आधिक्येन सागर तथा झाँसी जिले मे फैली है[2]। 'दागी' जाति पंजाब के जंगलो मे पायी जाती है[3]। सागर जिले मे (बुन्देली भाषा मे) जंगल को डाँग कहा जाता है। यह शब्द निश्चयतः दण्डक का विकसित रूप है। जंगल की लकड़ी काटने के लिए वहाँ 'डाँग काटबे जात है' का साधारणतः प्रयोग किया जाता है। इस दण्डक जनपद की स्थिति अधुनातन सागर, जालौन तथा झाँसी (कुछ अंश) जिलो में थी। कुछ लोग रघुवंशी राजपूत राजा दंग से दाँगियो

---

१. 'पुलिन्दा विन्ध्यमौलीया वैदर्भा दण्डकैः सह'

—ब्रह्माण्डपुराण २।१६।५८.

'पुलिन्दा विन्ध्यपुषिका वैदर्भा दण्डकैः सह'—मत्स्यपुराण ११४।४८.

२. दाँगी—An agricultural tribe found chiefly in झाँसी. The राजा दंग, a रघुवशी राजपूत, from whom they trace descent but the word Probably means no more than "hill man" (हिन्दी-दंग "a hill man') The Profess to be immigrants from a place called Niravar (नरवर), in the ग्वालियर state, with which, however, they appear to hold no connection by marriage or Pilgrimage, selection of bards, priests, or barbars, and those at present resident in the झाँसी district have come chiefly within comparatively recent times from the दतिया and टीकमगढ़ states.—W. Crooke, B. A. : Tribe and casts.

3. 'Dāgī—leather workers—Panjab hills'—Sir Athelstane Baines : Ethnography, P. 135.

१ अगोल

रहने का स्थान—इस नसल के पशु आंध्र-प्रदेश के अगोल जिले मे पाये जाते है तथा नैलोर और गटूर जिलो मे भी मिलते है।

वशोत्पत्ति का इतिहास—उस इलाके मे मनुष्यो की वस्ती अधिक है और खेती का काम भी खूब होता है। इसलिए खेती तथा दूध दोनो की ही आवश्यकता को पूरा करने की दृष्टि से उनकी वश-वृद्धि की गई है। इन दोनो आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए इनमे अधिक-से-अधिक गुण प्रवेश कराने का प्रयत्न हुआ और इसमे कामयाबी भी हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उत्तरी भारत के भारी पशु, सभवत अफगानिस्तान के भगनारी पशुओ, को इधर लाया गया हो और इधर के पशुओ से सयोग कराकर इस नसल को कायम किया गया हो।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—भारत मे अगोल जाति के पशु सबसे भारी और बडे डील-डौल के होते है। कद ऊचा और शरीर बहुत लम्बा होता है। इनमे गाय का वजन ८५०-९०० पौंड, बैल का ९००-१००० पौड और साड का १०००-१२०० पौंड तक होता है। यह उत्तरी भारत के सफेद और भूरे पशुओ के प्रतिरूप होते है। इनकी खाल और रोआ पतला होता है। रग अधिकतर सफेद होता है। साड के सिर और गर्दन पर भूरा रग तथा घुटनो पर काला रग देखने मे आता है। इनकी कमर बहुत लम्बी, पेट खूब फैला हुआ और गहरा, तथा छाती खूब चौडी और भरी हुई होती है। सिर और माथा साधारण और कुछ उभरा हुआ होता है। इनके सीग छोटे और उत्तरी भारत के सफेद और भूरे पशुओ की भाति होते है। चेहरा बडा, आखे मध्यम साइज की और चमकीली होती है। नाक विशेष बडी नही होती। कान साधारण और लम्बे तथा कम लटकवा और बालोवाले होते है। गर्दन साधारण परन्तु मजबूत होती है। गल-कम्बल बडा और लटकवा होता है। थुई कुछ भारी और बडी होती है। कूल्हे भारी होते है। ऐन बडे

खुरई तहसील मे **ठाकुरबाबा** (पञ्चमसिंह) और **दरोइया** बाबा के चबूतरे (समाधियाँ) बने है। **दाँगी** क्षत्रिय इनकी पूजा करते है। प्रथम, ठाकुरबाबा (पञ्चमसिंह) बुन्देला जाति के नेता थे। उनका प्रभाव दूर-दूर तक फैल चुका था। द्वितीय, दरोइया (<द्रुह्यः) बाबा द्रुह्य जाति थी। इसका निवास खुरई-बीना के आस-पास था। मत्स्यपुराण मे पुलिन्दो से पहले द्रुह्य जाति का उल्लेख मिलता है[1]। इसी प्रकार राहतगढ़ की ओर शबर जाति का एक भेद रावत (जिझौतिया ब्राह्मणो मे भी **रावत** भेद मिलता है। जिझौतिया ब्राह्मणो ने अनेक वर्षो तक यहाँ राज्य किया था। भिलसा मे पुष्यमित्र भी राज्य करता था पर रामठ पद से उनका ग्रहण नही होता) पाया जाता है। **रावत** और **सौर** जातियाँ क्रमशः **रामठ** तथा **शबर** का विकसित रूप है। इनका उल्लेख मत्स्य-पुराण मे द्रुह्य, पुलिन्द, आभीर और पारदाहार ? (>**पड़िहार**) के अनन्तर आता है[2]। (पारदाः और हारमूर्तिकाः ऐसा भी विच्छेद किया जाता है।)

---

१. 'शका द्रुह्या. पुलिन्दाश्च पारदाहारमूर्तिकाः'—मत्स्यपुराण ११४।४?
(तुलनीय—मूर्तिकाः और ऐतरेय ब्राह्मण का मूतिबाः)

२. **रामठाः** कण्टकाराश्च कैकेया दशनामकाः।
क्षत्रियोपनिवेश्याश्च वैश्याः शूद्रकुलानि च ॥
—मत्स्यपुराण ११४।४२

राबर्ट् शेफर ने 'Ethnography of Ancient India' नामक अपनी पुस्तक के अन्त मे संलग्न मानचित्र मे 'रामठ' को हिमालय में अक्साइ चीन के निकट दिखलाया है। यद्यपि 'रामठाः' का विकास 'लामा' मान लिया जा सकता था तथापि उस स्थान से तिब्बत का कोई सबन्ध नहीं है।

कारूषाश्च सहैषीका आटव्याः **शबरास्तथा**।
पुलिन्दा विन्ध्यपुषिका वैदर्भा दण्डकैः सह ॥
—मत्स्यपुराण ११४।४८

अन्धाः शकाः पुलिन्दाश्च चूलिका यवनास्तथा।
कैवर्ताभीरशबरा ये चान्ये म्लेच्छसंभवाः ॥
—मत्स्यपुराण ५०।७६

राजा का पुत्र 'राजपुत्र' कहलाने का अधिकारी है। अजयगढ़ और उत्तरी गुजरात के शिलालेखों मे 'राउत'[1] और 'राउत्त'[2] शब्द राजपुत्र के अर्थ मे उत्कीर्ण है। सौरो से संबद्ध राउत शब्द या तो रामठ [>रावथ>रावत>राउत] से विकसित हुआ है ['म' का विकास 'व' होता है, यथा—नमन>नवना, गमन> गवन, गवना, आचमन>अँचोना, आदि] या फिर उक्त जाति कभी राजपद पर आसीन रह चुकी है। पंजाब के जंगलों मे भी 'राउत' जाति रहती है। उसका व्यवसाय कृषि है[3]।

---
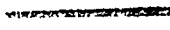
१. 'संवत् १३१७ राउत श्री जेतनव्यापारे श्रीमद्वीरवर्मराज्ये'—अजयगढ़ मे प्राप्त वीरवर्मन् चन्देल का शिलालेख (Epigraphia Indica, Vol. I, P. 328).

सस्कृत में केवल 'रा' लिखा है राउत नही किन्तु अँग्रेजी-अनुवाद मे सुस्पष्ट Rāut शब्द मिलता है। Archæological Survey, Vol. XXI में मूल संस्कृत मे Rāut शब्द विद्यमान है।

२. सवत् १२८२ वर्षे पौषशुदि ४ शुक्रे गेडीआ राउत्त [मे] घां [सुत्त] वणरां। [धा] रातीर्थे पतितः ॥

—Inscription From Northern Gujarat, No XI (Epigraphia Indica, Vol. II, P. 28).

'उपद्रष्टा रा० [utta] म [ल्ल] T'—Ahmadabad Inscription of Vis'āla Deva, [Vikrama] Samvat 1308 (Epigraphia Indica, Vol. V, P. 103).

३. 'Rāut—Peasants—Panjab hills'—Sir Athelstane Baines : Ethnography (Caste And Tribes) P. 163.

का वजन अधिक होता है। इसलिए चुनाव व छटाव के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वाछित गुणो के पशु नसल-वृद्धि के कार्य के लिए कम-से-कम वजन के हो, ताकि उनकी सतति कुछ कम वजनवाली हो और अन्य गुण ज्यो-के-त्यो बने रहे। इस प्रकार इनको कम-खर्चीला और अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

२ कृष्णा नदी-घाटी के पशु

रहने का स्थान—यह कृष्णा नदी की घाटी के निकट तथा हैदराबाद और बम्बई प्रान्त की दक्षिणी नदियो के पास पाये जाते हैं।

वशोत्पत्ति का इतिहास—यह इलाका अगोल जाति के पशुओ और अमृतमहल जाति के पशुओ के बीच मे स्थित है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नसल अगोल जाति और अमृतमहल की किस्म के पशुओ के सयोग से उत्पन्न हुई है। चराई की सुविधा होने के कारण इस नसल को कायम करने मे काफी कामयाबी हुई।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—इनका डीलडौल खासा अच्छा होता है, फिर भी अमृतमहल के पशुओ का बदन जितना खिचा हुआ होता है, उतना इनका नही होता। ये पशु मझले से कुछ बडे कद के होते है। इनकी लम्बाई भी काफी होती है। इनमे गाय का वजन ७५०-८०० पौड, बैल का ८००-८५० पौड और साड का ८५०-६०० पौड तक होता है। ये उत्तरी भारत के सफेद और भूरे पशुओ के प्रतिरूप होते है, परन्तु देखने मे इनकी आकृति पर अमृतमहल की किस्म के पशुओ का भी असर मालूम होता है। इनकी खाल और रोआ दोनो पतले होते है, परन्तु गर्दन, थुई और माथे पर भूरा या गहरा भूरा रग पाया जाता है। इनकी कमर लम्बी और सीधी, पेट खूब फैला हुआ, गहरा तथा छाती खासी चौडी और गहरी होती है। सिर छोटा और कान उभरे होते है। माथा चौडा और दोनो आखो के बीच मे कुछ दबा हुआ होता है। इनके सीग छोटे और थोडा फैलकर पीछे को होकर साधारण गोलाई

हो गया ; इसी प्रकार विन्ध्यमौलीय मे 'मौ' का लोप ज्ञेय है (विशेष-विवरण के लिए देखिए हमारी पुस्तक—'लोकविज्ञान')

इसी ओर रहने वाली अहीरजाति मे 'बँदेले' भेद पाया जाता है। यह भी विन्ध्यमौलीय का अपभ्रंश है। पूर्वोक्त मैना जाति-गत बँदाले लोगो की स्त्रियाँ तक गोचारण करती है। अतः बँदाले और बँदेले दोनो एक प्रतीत होते है। पश्चात् स्यात् कुछ सूक्ष्म भेद होने के कारण यह अलगाव हो गया हो। ब्रह्माण्डपुराण के सदृश मार्कण्डेयपुराण मे भी पुलिन्द के पश्चात् विन्ध्यमौलीय जनपद का वर्णन किया गया है[1]। अतः मत्स्यपुराण का 'विन्ध्यपुषिकाः' या तो जनपदान्तर है या फिर 'विन्ध्यमौलीयाः' का पाठभेद। वायुपुराण मे 'विन्ध्यमूलीकाः' पाठ विद्यमान है[2]। महाभारत मे 'विन्ध्यचुलिकाः' पाठ मिलता है[3]। मत्स्यपुराण मे केवल 'चूलिकाः' और वायुपुराण मे 'तूलिकाः' पाठ मिलते है[4]। वे सत्यभामा के 'भामा' (और 'सत्या') की भाँति ज्ञेय है।

कुरुमी

मार्कण्डेयपुराण मे पुलिन्द और सुमीन देशो के अनन्तर कुरुमी (कुरुमिन्) देश का वर्णन किया गया है (देखिए तीसवें पृष्ठ की पहली टिप्पणी)। यह कुरुमी शब्द निर्विवादरूपेण कुर्मी जाति का बोधक है। राहतगढ़ (सागर) तथा दमोह के आसपास कुर्मियो के गाँव के गाँव बसे है। वक्ष्यमाण भीलोन ग्राम से तीन मील दूर दक्षिण की ओर विन्ध्य पहाड़ की तलहटी मे कुर्मियो का गूजर करैया

---

१. आभीराः सह वैशिक्या आढक्या शबराश्च ये।
पुलिन्दा विन्ध्यमौलीया वैदर्भा दण्डकैः सह ॥
—मार्कण्डेयपुराण ५७।४७

२. अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः ॥१२४।
आभीराः सह चैषीका आटव्याश्च वराश्च ये।
पुलिन्दा विन्ध्यमूलीका वैदर्भा दण्डकैः सह ॥१२६।
—वायुपुराण ४५।१२४, १२६

३. 'तथैव विन्ध्यचुलिकाः पुलिन्दा वल्कलैः सह'—महाभारत ६।६।६२

४. 'अन्धाः शकाः पुलिन्दाश्च चूलिका यवनास्तथा'—मत्स्यपुराण ५०।७६
'अन्ध्राः शकाः पुलिन्दाश्च तूलिका यवनैः सह'—वायुपुराण ९९।२६८
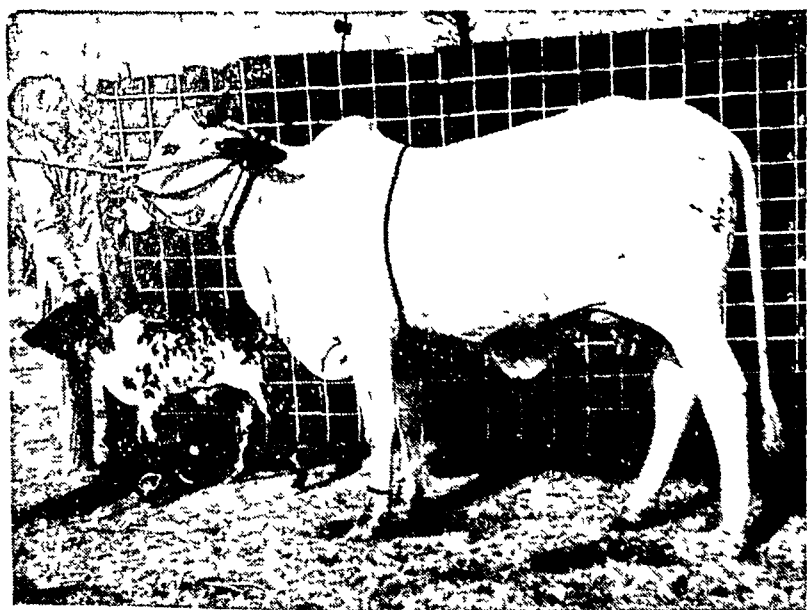
देओनी नसल का साड

देओनी नसल की गाय

शबर

शबर देश या जाति के नाम पर वर्तमान सागर जिले का शबर>सौर>सौ-(गो) र (Saugor) नाम पड़ा[1] । इस शबर>सौंर जाति की स्थिति जालन्धर (जरुआखेड़ा के पास) पहाड़ के आस-पास थी । यहाँ तेंदू, अचार, गोंद, इमारती लकड़ी, चंदन, बेर-मकोरा, मछौ (<मधु) तथा कैथ इत्यादि पर्याप्त मात्रा मे पाये जाते है । अब भी सौर (भील) जाति इनको बेच तथा खाकर अपना जीवन-निर्वाह करती है । सल्लक्षणसिंह के झाँसी-प्रस्तर-लेख[2] मे प्रचण्ड वेग वाले, धनुषो पर गर्व करने वाले भिल्लो [भीलो] का उल्लेख मिलता है । सल्लक्षणसिंह कीर्तिवर्मा (चन्देल राजा) के समसामयिक थे ।

जालंधर पहाड़ के पश्चिमी छोर पर भीलौन (<भिल्लवन) नामक ग्राम [कटनी-बीना लाइन पर सागर से तीसरे स्टेशन सुमरेरी से दो मील दक्षिण-पूर्व मे] आज भी बसा है । पहले-पहल उस मे दो सुविशाल घर थे । प्रत्येक घर के अन्दर लगभग एक-एक दर्जन छोटे-छोटे घर है । उनमे पृथक्-पृथक् परिवार रहा करते है । केन्द्रीय घर मे एक विशाल गुफा है । वह आपत्तिकाल मे शत्रुओ से प्राण बचाने के लिए बनायी गयी थी । उसका दूसरा छोर ग्राम से काफी दूर दक्षिण की ओर निकलता है । उसके मुहाने पर पत्थर रखा रहता है । उक्त ग्रामवासियो ने उसका इतिहास इस प्रकार बताया—

दुर्भिक्ष से पीडित हमारे पूर्वज ऊँट और हाथियो पर सवार होकर सपरिवार

---

१. पुलिन्ददेश—It included the western portion of बुन्देलखण्ड and the district of सागर (वामनपुराण अध्याय ७६). The कथासरित्सागर confounds the S'avaras (शवर) with the Pulindas (पुलिन्द) and S'avar (शवर) is the same as **Saugor** (Archæological survey report, Vol. XXI)

—Nundo Lal Dey The Geographical Dictionary of Ancient And Mediæval India. विशेष-विवरण के लिए द्र० Archæological Survey, Vol XVII, P. 112.

२. भिल्लानुद्गतरंहसः करल [ग] त्कोदण्डगर्व्वोद्धटा [नु]-

—Epigraphia Indica, Vol. I, P. 215.

के तटवर्ती इलाके समझने चाहिए।

वशोत्पत्ति का इतिहास—ऐसा प्रतीत होता है कि इस इलाके मे पशुओ के लिए चारा, दाना और अच्छी घास काफी होती थी। इसलिए अधिक दूध देने की दृष्टि से भी पशु-उन्नति का कार्य हुआ है। इनपर गिर जाति के पशुओ के सयोग का काफी असर है। इनके अलावा डागी और काकरेज जाति के पशुओ के साथ भी इनका सयोग हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक-सी नसलोत्पत्ति होने के कारण इनपर उन सबका १५०-२०० वर्षो तक बराबर खूब असर पडा है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु गिर जाति के पशुओ के प्रतिरूप है। इनका डीलडौल भी उन्हीकी तरह है। ये लम्बे, परन्तु वजन मे गिर से थोडा कम है। इनमे गाय का वजन लगभग ७०० पौड, बैल का लगभग ७५० पौड और साड का ८०० पौंड तक होता है। ये काले, गेरुए और सफेद रग के होते हैं। वैसे काले और सफेद मिले चितकबरे रग मे भी बहुतायत से मिलते है और अधिक पसन्द किये जाते है। इनकी खाल चिकनी और ढीली और रोआ बारीक होता है। कमर बीच मे थोडी झुकी होती है। पेट बाहर को खूब फैला हुआ और गहरा होता है। छाती चौडी और गहरी होती है। सिर और माथा गिर के समान थोडा उभरा हुआ होता है। इनके सीग पहले आगे की तरफ होकर ऊपर उठते है फिर पीछे को फैलकर चन्द्राकार होते है। इनका चेहरा पतला होता है। आखे बडी और चमकीली होती है लेकिन ऊपर का हिस्सा थोडा झुका हुआ होता है और आखो को ढक लेता है। नाक साधारण, कान बडे और लटकवा होते है। थुई बडी और भारी होती है। कूल्हे खूब भरे हुए और भारी होते है। ऐन गिर जाति की गाय-जैसे भारी और लटकवा नही होते। इसी माफिक इनके थन भी उतने बडे नही होते। पूछ खूब लम्बी और गुच्छेदार होती है। मूतना बडा और कम-लटकवा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा तापक्रम प्राय ५०°

बुन्देला

श्री डब्ल्यू, क्रूक महाशय ने लिखा है कि "मिर्जापुर के बुन्देला ठाकुरों की परम्परा के अनुसार वे गहरवार राजपूतो के वंशक्रम से आये हैं। उनका अभिजन विन्ध्याचल के निकट गौर ग्राम मे है। उनके पुरखो मे से किसी एक ने पन्ना-महाराज के यहाँ नौकरी कर ली थी। वह राजा सन्तानरहित मर गया। फल-स्वरूप गहरवार साहसी योद्धा ने उसके किले का अधिकार ले लिया। उसके भी कोई सन्तान नही थी। अतः जीवन से निराश होकर उसने विन्ध्याचल पर्वत पर स्थित विन्ध्यवासिनी देवी को अपना सिर समर्पित कर दिया। वेदी पर गिरी बूंदो से एक बालक उत्पन्न हुआ। पीछे चलकर वह बुन्देला कहलाया क्योंकि वह रक्त की बूंदो से उत्पन्न हुआ था। बुन्देला पन्ना लौट आया और उसने अपने नाम पर अपना वंश स्थिर किया[१]।"

---

१. बुदेला—A sept of Rājapūtas (राजपूत) almost entirely confined to the Bundel Khand country, to which they have given their name, now included in the Allahabad division, According to the Mirjāpur (मिर्जापुर) tradition they are descended from a family of Gaharvār Rājpūtas (गहरवार राजपूत), resident at the village of Gaur (गौर), near Vindhāchal (विन्ध्याचल). Of their ancesters one took service with the Rājā of Pannā (पन्ना), an independent state between Bāndā (बाँदा), and Jubbulpore (जबलपूर). The Rājā died childless, and the Gaharvār (गहरवार) adventurer took possession of his fort He had no son, and being disgusted with life, he made Pilgrimage to the shrine of the Vindhyavāsinī Devi (विन्ध्यवासिनी देवी), at Vindhāchal (विन्ध्याचल), where he offered his head to the goddess Out of the drops of his blood which fell upon the alter a boy was born, who was called Bundelá (बुन्देला), because he sprang from the drops (Būnd) of blood. He returned to pannā (पन्ना) and founded the clan which bears his name

—W. Crooke B A.: The Tribes And Casts.

: ६ :

महाराष्ट्र-प्रदेश के गाय-बैल

इस प्रदेश मे, दक्षिण मे मैसूर से लेकर उत्तर मे महागुजरात तक, अरबसागर और आध्र-प्रदेश तथा मध्य-प्रदेश के बीच का इलाका सम्मिलित है। यहा पर विविध प्रकार की भूमि पाई जाती है। यहा प्राय दुमट और चिकनी, लाल तथा काली मिट्टी मिलती है। कही-कही रेतीली भूमि भी मिलती है। इस प्रदेश मे वाछित खनिज पदार्थो की कुछ कमी है। यहा काफी गर्मी और सर्दी होती है। वर्षा ऋतु मे खूब वर्षा होती है। इस प्रदेश मे पहाडी भाग को छोडकर शेष भाग मे खेती खूब होती है। कोकण का इलाका धान की खेती के लिए प्रसिद्ध है। यहा चराई विशेष नही होती। कोकण के इलाके के अलावा यहा पशुओ की चराई, खिलाई-पिलाई अच्छी होती है, इसलिए इस इलाके के पशु खूब पुष्ट होते है।

इस इलाके मे मुख्यतया खिलारी, डागी और बम्बई के पास ककोन के धान के इलाके मे बहुत छोटे कद के ककोनी जाति के पशु मिलते है। इस प्रदेश के तटवर्ती पशु मध्य-प्रदेश, आध्र-प्रदेश और मैसूर-प्रदेश के पशुओ से प्रभावित है। इस इलाके मे किसी प्रसिद्ध जाति या नसल के पशु नही है। गाये यहा मामूली दूध देती है। बैलो मे अपेक्षाकृत काम करने की शक्ति अधिक होती है। वे चारे के अभाव मे थोडे चारे पर भी निर्वाह कर लेते है।

इस इलाके मे पशु-उन्नति का कार्य विधिवत्, ढग से, नही हुआ है। कुछ पशु-प्रजनन और उन्नति का कार्य पूना मे और वहा के सैनिक डेरी-फार्मो पर हुआ है। परन्तु इसका वहा के स्थानिक पशुओ पर कोई

के स्थान का अनुमान किया गया है[१]। संभव है इसकी एक शाखा वहाँ भी रही हो।) किसी से न दबने तथा किसी का अनुशासन न मानने के कारण इनका (दस्यु=शत्रु) यह नामकरण हुआ था। वामनपुराण मे इन्हे भीषणकर्मकार कहा गया है[२]।

वाल्मीकीय रामायण के किष्किन्धाकाण्ड मे देश-देशान्तरो के वर्णनप्रसङ्ग के अवसर पर सुग्रीव ने पुलिन्दो की स्थिति शूरसेन (=मथुरा आगरा) के आस-पास बतलायी थी[३]। श्रीमद्भागवत (१०।२१।१७) में भी उनकी आवा-जाई व्रज में बतलायी है। वहाँ पुलिन्दो को म्लेच्छो से अलग बतलाया गया है। म्लेच्छ शब्द पुलिन्दों का विशेषण नही है। अमरकोशकार पुलिन्दो को म्लेच्छ जाति का भेद बतलाते है[४]। वाल्मीकीय रामायण मे म्लेच्छो से पुलिन्दो का

---

१. मारुधं च विनिर्जित्य रम्यग्राममथो बलात्।
नाचीनानर्बुकांश्चैव राज्ञश्चैव महाबलः ॥१४।
तांस्तानाटविकान् सर्वानजयत् पाण्डुनन्दनः।
वाताधिपं च नृपतिं वशे चक्रे महाबलः ॥१५।
पुलिन्दांश्च रणे जित्वा ययौ दक्षिणतः पुरः।
युयुधे पाण्ड्यराजेन दिवसं नकुलानुजः ॥१६।
त जित्वा स महाबाहुः प्रययौ दक्षिणापथम्।
गुहामासादयामास किष्किन्धां लोकविश्रुताम् ॥१७।
—महाभारत २।३१।१४—१७

"महाभारत सभापर्व मे सहदेव के दिग्विजय के संबन्ध मे लिखा है कि उन्होंने अर्बुक राजाओ को जीतकर वाताधिप को वश मे किया और उसके पीछे पुलिन्दों को जीतकर वे दक्षिण की ओर बढ़े। कुछ लोगों के अनुमान के अनुसार यदि अर्बुक को आबू पहाड और वात को वातापिपुरी (बादामी) माने तो गुजरात और राजपूताने के बीच पुलिन्द जाति का स्थान ठहरता है"—हिन्दीशब्दसागर.

२. 'प्रोवाच तान् भीषणकर्मकारान् नाम्ना पुलिन्दान् मम पापसंभवाः!'
— वामनपुराण ७६।२५

३. 'तत्र म्लेच्छान् पुलिन्दांश्च शूरसेनांस्तथैव च'
—वाल्मीकीय रामायण ४।४३।११

४. 'भेदाः किरात-शबर-पुलिन्दा म्लेच्छजातयः'—अमरकोश २।१०।२०
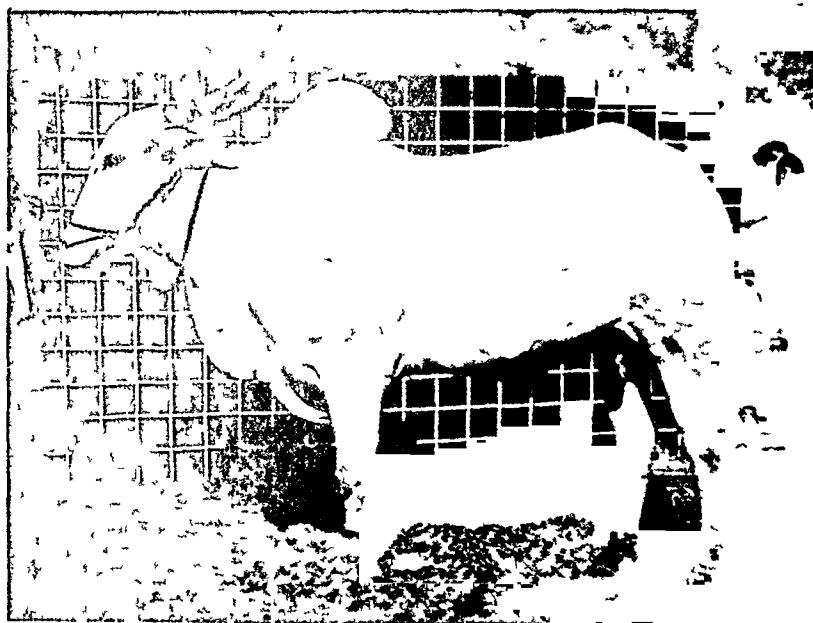
खिलारी नसल का साड
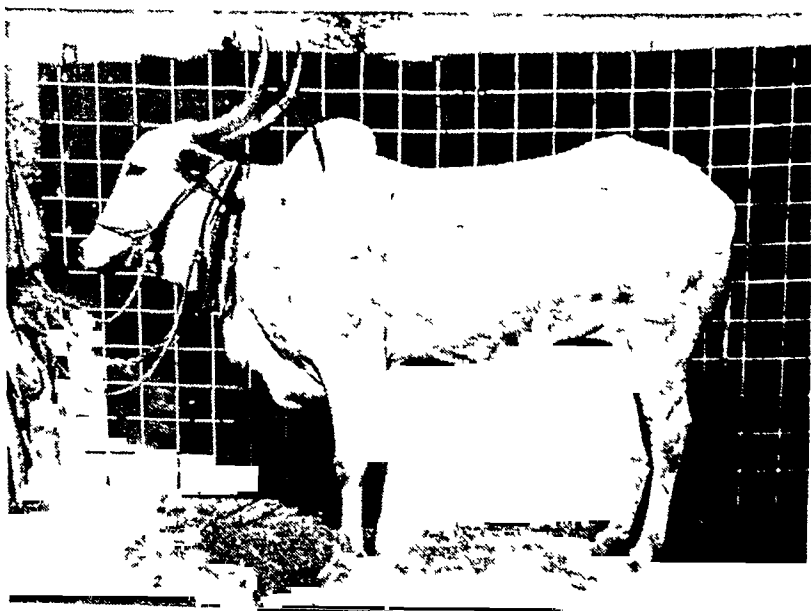
खिलारी नसल की गाय

गया है[1]। यह जनपद या तो सिन्धु नदी के आस-पास स्थित था या फिर भोपाल से आगे सहदेव द्वारा विजित पुलिन्द ही सिन्धुपुलिन्द कह दिये गये।

महाभारत मे पुलिन्द दुर्योधन की ओर से युद्ध करते थे। यह द्रोणाचार्य तथा कर्ण के सेनापतित्व मे देखे गये[2]। भगदत्त की टुकड़ी मे मगध, कलिङ्ग- और पिशाच-जनपदीय लोग थे, पुलिन्द नही। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार द्रोणाचार्य के पिता भरद्वाज का आश्रम प्रयाग मे गगा-यमुना सगम से आगे मुहूर्त भर के रास्ते पर स्थित था[3]। श्री रामचन्द्र द्वारा एकान्त आश्रम स्थान का पता पूछे जाने पर भरद्वाज ने उन्हे वहाँ से दस कोस दूरवर्ती चित्रकूट गिरि का परिचय दिया[4]। चित्रकूट बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत पड़ता है। ओरछा राज्य

---

१. तत्रेमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः।
शूरसेनाः पुलिन्दाश्च बोधा मालास्तथैव च ॥३९॥
मत्स्याः कुशल्याः सौशल्याः कुन्तयः कान्तिकोसलाः।
चेदिमत्स्यकरूषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः ॥४०॥
—महाभारत ६।४२।३९—४०

२. अग्रतः सर्वसैन्याना भीष्मः शान्तनवो ययौ।
मालवैर्दाक्षिणात्यैश्च आवन्त्यैश्च समन्वितः ॥६॥
ततोऽनन्तरमेवासीद् भारद्वाजः प्रतापवान्।
पुलिन्दैश्च पारदैश्च तथा क्षुद्रकमालवैः ॥७॥
द्रोणादनन्तरं यत्तो भगदत्तः प्रतापवान्।
मगधैश्च कलिङ्गैश्च पिशाचैश्च विशांपते! ॥८॥
—महाभारत ६।८७।६—८

'सशक्तिप्रासतूणीरानश्वारोहान् हयानपि।
पुलिन्दखसबाह्लीकनिषादान्ध्रककुन्तलान्'—महाभारत ८।२०।१०
'आन्ध्रकाश्च पुलिन्दाश्च किराताश्चोग्रविक्रमाः।
म्लेच्छाश्च पर्वतीयाश्च सागरानूपवासिनः'—महाभारत ८।७३।२०

३. गङ्गायमुनयोः सन्धौ प्रापतुर्निलयं मुनेः ॥८॥
रामस्त्वाश्रममासाद्य त्रासयन् मृगपक्षिणः।
गत्वा मुहूर्तमध्वानं भरद्वाजमुपागमत् ॥
—वाल्मीकीय रामायण २।५४।८—९

४. दशक्रोश इतस्तात! गिरिर्यस्मिन् निवत्स्यसि।
महर्षिसेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः ॥ वा० रा० २।५४।२८

हैं परन्तु उनके पीछे के पुट्ठो के पास गर्दन और थुई पर भूरा रग भी होता हे। इनकी कमर खूब लम्बी तथा पेट बाहर को फैला हुआ और काफी गहरा होता है। छाती काफी चौडी होती है। सिर अमृतमहल-से मिलता-जुलता, माथा अमृतमहल से कम चौडा, सीग अमृतमहल-जैसे जरा सफेद रग लिये होते हैं, परन्तु पीछे को अधिक न जाकर ऊपर को उठे होते है। चेहरा जरा छोटा होता है। आखे चमकीली और छोटी होती है। नाक साधारण होती हे। कान जरा छोटे और खडे होते है। गर्दन बीच के नाप की, परन्तु मजबूत होती हे। गल-कम्बल बीच के साइज का और लटकवा होता है। थुई साधारण परन्तु कुछ ऊपर को उठी हुई होती हे। कूल्हे मजबूत होते हैं। ऐन साधारण और थन मध्यम दर्जे के होते है। पूछ छोटी, काली, गुच्छेदार होती है। मूतना छोटा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—तापक्रम प्राय ४५° से ११०° फा० हा० और वर्षा ३५ इच प्रतिवर्ष होती है। इस इलाके मे तरी और गर्मी अधिक तथा भूमि कम कडी और मुलायम होने के कारण ये पशु हल्के काम करने के आदी होगये है और भारी काम करने मे कम कुशल हैं। खनिज पदार्थों की कम कमी और खिलाई-पिलाई अच्छी होने के कारण शरीर का ढाचा कुछ अच्छा होता है।

गाय और बैल के गुण—इस जाति की गाये कृष्णा नदी-घाटी की गायो से कम दूध देती है। अच्छी गाय भी ५ या ६ सेर से अधिक दूध नही देती। गाय पहले ५ वर्ष मे ब्याती है और बाद मे औसतन डेढ वर्ष मे ब्याती रहती है। बैलो मे दम अधिक होता है। चारे के अभाव मे यह थोडे चारे पर ही निर्वाह कर लेते है और काफी देर तक हल चला सकते है तथा सडक पर गाडी खीच सकते है।

उन्नति के उपाय—यदि अच्छे चारे-दाने का खिलाने का प्रबन्ध हो जाय और उनको भली प्रकार रखा जाय, तो बुद्धियुक्त चुनाव और

निकटवर्ती पुलिन्दनगर पर भीमसेन का आक्रमण पुलिन्द[illegible] उल्लेख बताने मे अत्यन्त सहायक है। यह पुलिन्दनगर किसी पुलिन्द नामक राजा या जाति के नाम पर अवश्य बसा होगा। चेदि पुरातन बुन्देलखण्ड कभी नही था। पुलिन्द और चेदि देशो का पृथक्शः वर्णन दोनो का भेद सूचित करने के लिए पर्याप्त है। कुछ विद्वान् शूरसेन के निकटवर्ती पुलिन्द को बुलन्द शहर और कुछ (पुलिन्दाः>) बाँदा बताते है। बुलन्दशहर पुरातन नाम नही है[1]।

पुलिन्द नामक कुछ शासक भी हो गये है। विष्णुपुराण मे चन्द्रगुप्त के अनन्तर पुष्यमित्र की छटी पीढ़ी मे 'पुलिन्दक' नामक शासक का उल्लेख आया है[2]। उसी विष्णुपुराण मे पलेलक के पुत्र तथा सुन्दर के पिता 'पुलिन्दसेन' का वर्णन हुआ है[3]। (मद्रास प्रेसीडेन्सी) गञ्जाम जिला मे गुमसूर तालुका के बुगुड ग्राम मे प्राप्त ताम्रपत्र-अभिलेख के अनुसार पुलिन्दसेन नामक राजा कलिङ्ग देश की जनता मे ख्यात था[4]। शुङ्ग राजवंश के पुष्यमित्र और अग्निमित्र की पश्चिमी राजधानी विदिशा थी[5]। अग्निमित्र के पौत्र वसुमित्र का पौत्र पुलिन्दक था। इस शुङ्गवशीय पुलिन्दक के नाम पर बुन्देलखण्डी सीमा विस्तार की सभावना

---

१. The old name of Buland shahr itself was Varana or Barana. This is no doubt the place after which the Vārana gana was named.

—Epigraphia Indica, Vol. I, P. 379

२. पुष्यमित्रः सेनापतिः स्वामिनं हत्वा राज्यं करिष्यति तस्यात्मजोऽग्निमित्रः ॥३४।
तस्मात् सुज्येष्ठस्ततो वसुमित्रस्तस्मादप्युदङ्कस्ततः पुलिन्दकस्ततो घोषवसुः ॥३५।

—विष्णुपुराण ४।२४।३४—३५

३. 'हालाहलात् पललकस्ततः पुलिन्दसेनस्ततः सुन्दरस्ततः शातकर्णिः'

—विष्णुपुराण ४।२४।४७

४. राजीवकोमलदलायतलोचनान्तः ख्यातः कलिङ्गजनतासु पुलिन्दसेनः॥२।
No 6 Bugud Plates of Madhava varman (Epigraphia Indica, Vol III, P. 43)

५ It (विदिशा) remaind as the western capital of पुष्यमित्र and अग्निमित्र of the शुग dynasty. विदिशा the chief city of दशार्ण was a halting place on the दक्षिणापथ.

—B. C. Law.
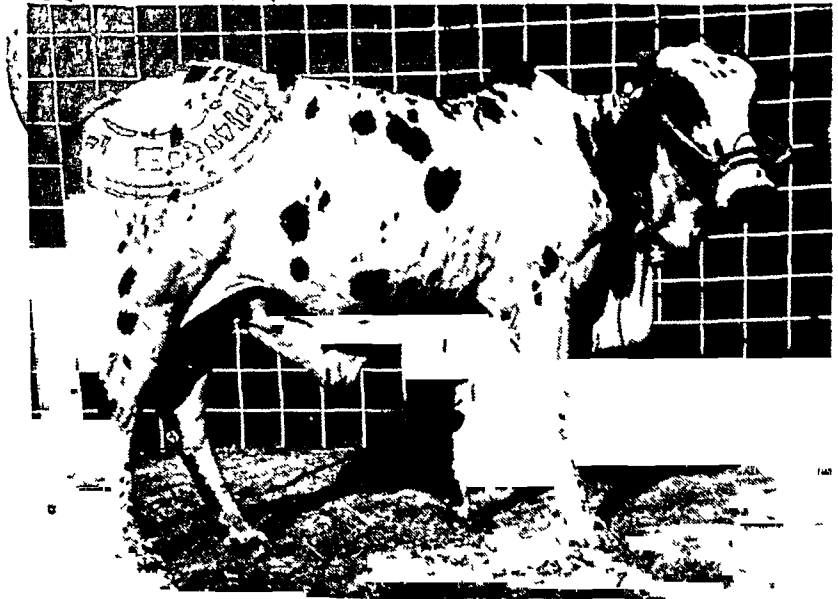
डागी नसल का साड

महाभारत (आदिपर्व) के अनुसार विश्वामित्र ने वशिष्ठ की कामधेनु का बलपूर्वक अपहरण करने का प्रयत्न किया। कामधेनु ने क्रुद्ध होकर मुख के फेन से चिवुक, पुलिन्द, चीन, हूण तथा केरल आदि अनेक प्रकार के म्लेच्छ उत्पन्न किये[1]। मेरी बुद्धि के अनुसार कामधेनु (गौ) का अर्थ पृथिवी है (वह भी विशेषतः आर्यावर्त से संबद्ध)। इस आर्यावर्त के पूर्वी भाग मे किरात, भील आदि का तथा पश्चिमी भाग मे यवनो का निवास सर्वजनवेद्य है[2]। पूर्व दिशा में ठहरा हुआ गौ का मुख उसके इच्छानुरूप हिलाने-डुलाने से पूर्वोत्तर और पूर्वदक्षिण की ओर भी मुड़ जाता है। फलतः पूर्वोत्तरीय चीनी लोगो की फेन से उत्पत्ति की बात संगत हो जाती है। पुलिन्दो की प्रथमोत्पत्ति भी हिमालय के निकट ज्ञेय है। कालञ्जर के पास तो वे इन्द्र के साथ आये थे। लिङ्गपुराण के अनुसार उनका नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व और वारुण देशो मे भी जाकर बस जाना सिद्ध होता है[3]। वैखानसधर्मप्रश्न मे उन्हे अरण्यवृत्ति एव दुष्टमृगघाती कहा गया है[4]। यहाँ पुलिन्द जाति को म्लेच्छ संज्ञा नही दी गयी। दुष्टमृगघाती कहकर उन्हे शूर और सज्जनो के प्रति दयालु आदि दिखाया गया है।

उक्त जातियो को उत्पन्न करने वाली कामधेनु जहाँ रहती थी वह वशिष्ठाश्रम

एते चान्ये च बहवः क्षत्रिया मुख्यसंमताः ॥३२॥
उपासते सभायां स्म कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥३३॥

—महाभारत २।४।२४,३२,३३

१. चिबुकांश्च पुलिन्दांश्च चीनान् हूणान् सकेरलान्।
ससर्ज फेनतः सा गौर्म्लेच्छान् बहुविधानपि ॥

—महाभारत १।१७६।३७

२. पूर्वे किरातास्तस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च सर्वशः ॥

—लिङ्गपुराण पूर्वा० ५२।२६

'पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा'—मार्कण्डेयपुराण ५७।८

३. नागद्वीपं तथा सौम्यं गान्धर्वं वारुणं गताः।
केचिन्म्लेच्छाः पुलिन्दाश्च नानाजातिसमुद्भवाः ॥

—लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध ५२।२८

४. 'गूढाचारात् पुलिन्दोऽरण्यवृत्तिः दुष्टमृगघाती'

—वैखानसधर्मप्रश्न ३।१४।२

दर्जे का और कम लटकवा होता है। गायो की थुई साधारण परन्तु नर पशुओ की अच्छी विकसित होती हे। कूल्हे मजबूत और चौडे होते हैं। ऐन और थन छोटे होते है। पूछ छोटी गुच्छेदार होती है। मूतना बीच के साइज का परन्तु कम-लटकवा होता है। इन पशुओ के खुर सख्त काले और बिल्लौरी पत्थर-जैसे होते है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा तापक्रम प्राय ४०° से ११२° फा० तक रहता है। ये पशु पथरीली तथा काली चिकनी मिट्टी की धरती के इलाके मे पाये जाते है। यहा वर्षा ४० इच से ऊपर होती है। वायु मे तरी रहती है। आवश्यक खनिज पदार्थों की कमी भी है। धान की खेती विशेष रूप से होती है, इसलिए इन पशुओ का डील-डौल कम बढ पाया है। इस इलाके के निवासियो का मुख्य धन्धा खेती है इसलिए पशु-पालन मे विशेष दिलचस्पी लेते है और इनकी खिलाई-पिलाई अच्छी करते है। ये काम करने मे और बोझ ढोने मे मजबूत और खास फुर्तीले होते हैं।

गाय और बैल के गुण—गाये दूध देने मे अच्छी नही होती। ये तीन-चार सेर तक दूध देती है। ये पहली बार चार या साढे चार वर्ष मे ब्याती है, फिर करीब डेढ वर्ष मे ब्याती है। बैल फुर्तीले और सख्त काम करनेवाले होते है। इस जाति के पशु घनी वर्षा को बर्दाश्त कर सकते है। इस इलाके मे वर्षा बहुत होती है इसलिए इस इलाके के लिए ये पशु बहुत उपयुक्त है। ये गुण आसपास के इलाके के पशुओ मे कम हैं।

उन्नति के उपाय—असल मे यह कोई नसल नही है। इस जाति के पशु आसपास के इलाके के गिर, देओनी, निमारी और ग्वालो पशुओ के मिश्रण है। इनमे जिस जाति के पशु का खून अधिक हुआ, उसीका गुण इनमे विशेष रूप से दिखाई देने लगा है। स्थानीय चुनैता पशुओ मे जिन गुणो की कमी हो उसी प्रकार के अधिक गुणवाले स्थानिक पशुओं के साड से ही इनका सयोग कराना अच्छा है और समुचित चुनाव और छटाव के साथ वश-वृद्धि का कार्य करना चाहिए। यदि ऐसा करने के

त्रेतायुग के आरम्भ से उक्त जातियाँ पनपी[1]। शक, यवन, कम्बोज, द्रविड, कलिङ्ग, पुलिन्द, उशीनर, कोली, सर्प, महिषक आदि जातियाँ पहले क्षत्रिय थी। (दूरदेश अथवा दुर्गम जंगली प्रदेशो में रहने के कारण) संस्कार-विधायक ब्राह्मणो के साथ साक्षात्कार न हो पाने से यह जातियाँ धीरे-धीरे यज्ञ आदि धर्मो से विहीन हो गयी। ये लोग इतने खूखवार होते थे कि महाभारत काल के नृपति इन पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा इनसे पराजित होना श्रेयस्कर समझते थे[2]। जंगली वातावरण मे ज्ञान का साधन न होने के कारण पुलिन्द तथा शबर जातियाँ यज्ञादि से एकदम शून्य थी। महाभारत मे यज्ञविहीन लोगो की नरकगमन की अनिवार्यता की उपमा पुलिन्द और शबरो से दी गयी है[3]। देवीभागवतपुराण मे तो अन्न, आश्रम आदि नियमो के अभाव मे सभी जातियाँ म्लेच्छ बतायी गयी है[4]।

इन धर्मविमुखो की इस क्रूरकर्मता से घबड़ाकर मान्धाता ने इन्द्र से प्रश्न

---

१. दक्षिणापथजन्मानः सर्वे नरवरान्ध्रकाः।
गुहाः पुलिन्दाः शबराश्चूचुका मद्रकैः सह ॥४२।
नैते कृतयुगे तात! चरन्ति पृथिवीमिमाम्।
त्रेताप्रभृति वर्द्धन्ते ते जना भरतर्षभ! ॥४५।

—महाभारत १२।२०७।४२,४५

२. शका यवनकाम्बोजास्तास्ताः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात् ॥२१।
द्रविडाश्च कलिङ्गाश्च पुलिन्दाश्चाप्युशीनराः।
कोलिसर्पा महिषकास्तास्ताः क्षत्रियजातयः ॥२२।
वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात्।
श्रेयान् पराजयस्तेभ्यो न जयो जयतां वर! ॥२३।

—महाभारत १३।३३।२१—२३

३. नह्ययज्ञा अमु लोके प्राप्नुवन्ति कथञ्चन।
आपातान् प्रतितिष्ठन्ति पुलिन्दशबरा इव ॥

—महाभारत १२।१५१।८

४. अन्नानां नियमो नास्ति योनीनां च विशेषतः।
आश्रमाणां जनानां च सर्वे म्लेच्छाः कलौ युगे ॥५२।
एव कलौ संप्रवृत्ते सर्व म्लेच्छमयं भवेत्।
हस्तप्रमाणे वृक्षे च अङ्गुष्ठे चैव मानवे ॥५३।

—देवीभागवतपुराण ६।८।५२—५३

: ७ :

मध्यप्रदेश के गाय-बैल

इस इलाके की सीमा के दक्षिण-पश्चिम भाग मे आध्र-प्रदेश, पश्चिम भाग में महाराष्ट्र-प्रदेश, उत्तर-पश्चिम मे महागुजरात तथा राजस्थान, उत्तर-पूर्व मे उत्तरप्रदेश और पूर्व मे विहार तथा दक्षिण-पूर्व मे उडीसा-प्रदेश हे ।

यहा की भूमि रेतीली, दुमट, चिकनी और कपास वोने योग्य काली तथा पथरीली होती है । यहा राजस्थान से लगे हुए इलाके को छोडकर वाछित खनिज पदार्थो की प्राय कमी है और जलवायु भी निकम्मी है । वर्षा वहुत होती है । वर्षाकाल मे तो यहा मैदानो मे खूब पानी भर जाता है ।

राजस्थान के निकट इस इलाके मे पशुओ के लिए चराई काफी मिलती है । उत्तरप्रदेश के निकट के इस इलाके मे चराई इससे कम मिलती है । सतपुडा और विन्ध्याचल की पर्वत-श्रेणियो के आसपास मैदानी और पहाडी तथा नर्मदा और ताप्ती नदियो के निकटस्थ इलाको मे भी चराई मिलती है । इसके अतिरिक्त शेष प्रदेश मे चराई बहुत कम मिलती है । जहा चराई कम मिलती है वहा का चारा-घास आदि भी इस प्रदेश मे के उत्तरी भाग के चारे-घास की तरह पौष्टिक नही होता । पशु चराई के अलावा खेती के घास-भूसे पर ही निर्भर करते है । यहा ऊपर से दाना आदि खिलाने का रिवाज नही है और न यहा हरा चारा ही वोया जाता है । इसलिए गाये इतना कम दूध देती है कि अक्सर उन्हे दुहा ही नही जाता । वैल इतने कमजोर होते है कि खेती और यातायात का काम अधिकाश मे भैसो से लिया जाता है । यहा अत्यधिक वर्षा और

महाभारत (वनपर्व) मे पुलिन्दो को म्लेच्छ, मृषानुशासी, पापी तथा मृषा-वादपरायण विशेषण देकर, बताया गया है कि वे कलियुग मे राज्य करेंगे[1]। श्रीमद्भागवत के अनुसार मगध मे महाबलशाली विश्वस्फूर्जि (अथवा विश्वस्फाणि) शासक होगा। वह पुलिन्द, यदु तथा मद्रक वर्णों को प्रतिष्ठित करेगा। प्रजा को अब्रह्मभूयिष्ठ बनाकर प्रयाग पर्यन्त राज्य का उपभोग करेगा[2]। ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार इस राजा को महाबलशाली विश्वस्फाणि बतलाया गया है। वह समस्त पार्थिवो को मारकर कैवर्त मद्रक पुलिन्द आदि वर्णों को राजा बनाएगा[3]। वायु-पुराण मे भी इसी प्रकार का वर्णन आया है। केवल 'मद्रकांश्च' के स्थान पर 'पञ्चकाश्च' पाठभेद मिलता है। वहाँ उसे युद्ध मे विष्णु के सदृश बलशाली बताया गया है[4]। उपर्युक्त तीनो पुराणो के साक्ष्य से इतना तो सिद्ध होता ही

---

१. ब्राह्मणाः सर्वभक्षाश्च भविष्यन्ति कलौ युगे।
अजपा ब्राह्मणास्तात! शूद्रा जपपरायणाः ॥३३।
विपरीते तदा लोके पूर्वरूपं क्षयस्य तत्।
बहवो म्लेच्छराजानः पृथिव्यां मनुजाधिप! ॥३४।
मृषानुशासिनः पापा मृषावादपरायणाः।
अन्ध्राः शकाः पुलिन्दाश्च यवनाश्च नराधिपाः ॥३५।
—महाभारत ३।१८८।३३—३५

२. मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरञ्जयः।
करिष्यत्यपरान् वर्णान् पुलिन्दयदुमद्रकान् ॥३६।
प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः।
वीर्यवान् क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि ॥
अनुगङ्गमाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥३७।
—श्रीमद्भागवत १२।१।३६—३७

३. मगधानां महावीर्यो विश्वस्फाणिर्भविष्यति ॥१६०।
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् सोऽन्यान् वर्णान् करिष्यति।
कैवर्तान् मद्रकांश्चैव पुलिन्दान् ब्राह्मणांस्तथा ॥१६१।
—ब्रह्माण्डपुराण ३।७४।१६०—१६१

४. मागधानां महावीर्यो विश्वस्फाणिर्भविष्यति।
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् सोऽन्यान् वर्णान् करिष्यति ॥

सकेगी, क्योकि गाय की नर और मादा दोनो सन्तानो के अधिक और और पूरे उपयोग से ही कम लागत पर अधिक उत्पादन किया जा सकता है।

इस इलाके की कुछ जाति के पशुओ का वर्णन नीचे दिया जाता है—

(१) ग्वालो, (२) निमारी, (३) मालवी, (४) विध्याचली, (५) नर्मदा-घाटी के मध्य भाग के पशु, (६) सतपुडा डिवीजन के पशु, (७) मध्यप्रदेश के तराई और धान के इलाके के पशु।

१. ग्वालो

रहने का स्थान—यह मध्यप्रदेश, वर्धा तथा छिंदवाडा जिलो मे, सतपुडा की घाटी तथा नागपुर जिले के कुछ भाग मे पाये जाते हैं। वर्धा इनका केन्द्र है।

वशोत्पत्ति का इतिहास—इनका वशोन्नति का कार्य स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए आरम्भ मे मालवी, उत्तरी भारत के सफेद और भूरे रग के पशुओ या काकरेज जाति के पशुओ के सयोग से किया गया है। इसमे कामयाबी भी हुई है और काफी हद तक वांछित गुण जमा हो गये है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—यह उत्तरी भारत के सफेद और भूरे पशुओ के प्रतिरूप होते है। बहुत ऊचे नही होते, पर इनका शरीर लम्बा और हल्का होता है। इनमे गाय का वजन लगभग ६५०-७०० पौड, बैल का ७००-७५० पौड तथा साड का ७५०-८५० पौड तक होता है। इनकी खाल और रोआ बीच के दर्जे के होते है। गाय अधिकतर सफेद होती है परन्तु बैल का सिर, गर्दन तथा अगला हिस्सा भूरे रग का होता है। कमर सीधी और पेट न तो दोनो तरफ फैला हुआ और न गहरा होता है। इनकी छाती भी विशेष चौडी नही होती। सिर चौडा और माथा उभरा हुआ होता है। इनके सीग छोटे और उत्तरी भारत के पशुओ से मिलते-जुलते होते हे, परन्तु नोकीले नही होते है। चेहरा

वनस्पर और पुलिन्द

वस्तुतः उक्त 'विश्वस्फाणि' ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। सारनाथ के दो शिलालेखो मे वनस्पर[1] अथवा वनष्पर क्षत्रप का नाम उत्कीर्ण है। उक्त शिला-लेखो से ज्ञात होता है कि कनिष्क के शासन-काल के तीसरे वर्ष वनस्पर उस प्रान्त का क्षत्रप था जिसके अन्तर्गत वाराणसी पड़ता था। इसी वनस्पर के वंशज बुन्देलखण्ड के बनाफर कहलाये। ये चन्देलो के समय तक अपनी वीरता एवं युद्धकौशल के लिए सुप्रसिद्ध थे। विश्वस्फाणि या विश्वस्फूर्जि वनस्पर या वनष्पर के अतिरिक्त कुछ नही। बुन्देलखण्ड मे इन बनाफरों के नाम से एक बनाफरी बोली भी प्रचलित है। बनाफर राय आल्हा इसी वंश मे उत्पन्न हुए थे। महियर या मैहर की प्रसिद्ध शारदा देवी का मन्दिर आल्हा ने बनवाया था।

वनस्पर ने दीर्घकाल तक शासन किया। अतः उसका समय सन् ९० ई० से १२० ई० तक माना जा सकता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार विश्वस्फूर्जि ने अपना केन्द्र पद्मावती[2] मे स्थापित किया था। मगध से लेकर प्रयाग-पर्यन्त अपने राज्य का विस्तार किया था। अन्त में समस्त बुन्देलखण्ड पर उसका आधिपत्य हो गया। उसने बिहार से मद्रको (संभवतः जाटो) को भी बुन्देलखण्ड में बुलवाया। ये लोग मूलतः पंजाब के निवासी थे।

---

1. Two names found in the Sārnāth inscriptions, to which a considerable amount of interest attaches are Kharapallāna and vanaspara (or vanashpara)—P. 173.

'क्षत्रपेन वनस्परेन खरपल्लानेन च सहा च [तु] हि परिशाहि सर्वसत्वनं हितसुखार्थं'—१७६ पृष्ठ।

Is perhaps vanaspharena to be read? The Bodhisattva inscription has clearly vanashparena (वनष्परेन).

—Epigraphia Indica, Vol. VIII, P 173, 176.

२. 'पद्मावती का आधुनिक नाम, जिसे कनिंघम नरवर मानते हैं, पवाँया है। यह ग्वालियर रियासत के डभोरा स्टेशन से बारह मील पर है'—बुन्देल-खण्ड सं० इ०, १३ पृ०।

का साथ दिया था संभवतः इसलिए जायसवाल जी ने लिखा है कि 'वे भारतीय पुलिन्द नही थे'। विदेशियो को सहयोग देने के कारण उनके साथ पुलिन्दो का उल्लेख भी विचारको को भ्रम मे डाल देता है।

वस्तुतः जिस 'पुराण टेक्स्ट्' के आधार पर जायसवाल जी ने 'पुलिन्द अब्राह्मणानाम्' लिखकर पुलिन्दो को शकपुलिन्द या विदेशी सिद्ध किया है उस ग्रन्थ मे इस प्रकार का कोई वचन नही है। उक्त ग्रन्थ के बावनवें पृष्ठ पर छत्तीसवी टिप्पणी मे 'पुलिन्दाब्राह्मणान्' लिखा है। यह विष्णुपुराण के 'पुलिन्द-ब्राह्मणान्' (राज्ये स्थापयिष्यति) का पाठभेद है। ब्रह्माण्डपुराण (३।७४।१९१) और वायुपुराण (९९।३७९) के अनुसार "बनाफर(<विश्वस्फाणि) ने क्षत्रियो को छोड प्रायः समस्त जातियो को शासक बनाया। उसके साम्राज्य मे पुलिन्द और ब्राह्मण भी भूपति थे" यह वर्णन स्पष्ट बतलाता है कि बुन्देलखण्ड में पुलिन्द, **भारशिव** और वाकाटक विन्ध्यशक्ति आदि ब्राह्मण (विश्वस्फाणि, तथा उसके वंशजो के आश्रित) शासक थे। बनाफर केवल क्षत्रियों से चिढ़ता था। श्रीमद्भागवत के 'प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः' के स्थान पर 'प्रजाश्चाधर्मभूयिष्ठाः' भी पाठ मिलता है। वहाँ 'ब्रह्म' का तात्पर्य ब्राह्मण नही किन्तु 'वेद' आदि है। बनाफर के शासन में प्रजा वैदिक अध्ययन से सर्वथा पराङ्मुख हो गयी थी। सम्भवतः वह पुराणों की कथाओ और अवैदिक देवी-देवताओ के पूजन को महत्त्व देने लगी थी।

बनाफर को अधार्मिक और ब्राह्मणद्वेषी बतलाना नितान्त असंगत होगा। उसने क्षत्रियों का नाश करके अन्य वर्णो को क्षत्रिय बनाया; और देव, पितर तथा ब्राह्मणो की पूजा की। जाह्नवी के तट पर शरीर छोड़ा एवं इन्द्रलोक को गया। यदि वह अधार्मिक होता तो न तो ब्राह्मणो को राजा बनाता और न देव, पितर तथा ब्राह्मणो की पूजा ही करता।

'पुलिन्दयवु' नामक कोई जाति नही थी। पुराण टेक्स्ट् के बावन पृष्ठ की पैतीसवी टिप्पणी मे 'यद्र', 'यद्रु' (अथवा पद्रु) और 'पुलिन्दायवु' पाठभेद लिखे है। उक्त पाठभेद 'करिष्यत्यपरान् वर्णान् पुलिन्द-यदु-मद्रकान्' (भागवत १२।१।३६) श्लोक के 'पुलिन्द-यदु' के स्थान पर दिखलाये गये है। पुलिन्द और यदु या यद्रु दो शब्द है एक नही। यदि वे दोनो एक मान लिये जाएँ तो 'पुलिन्द-यदु-मद्रकान्' मे बहुवचन संगत न हो सकेगा। यदि इनमें से प्रत्येक शब्द बहुवचनान्त मान लिया जाए तो भी 'पुलिन्दायवु' पाठ है पुलिन्दयवु नही। वस्तुतः अन्य पुराणो के श्लोको के साथ तुलना करने पर सुस्पष्ट तीन शब्द प्रतीत होते है दो नही। महाभारत (३।१८८।३५) के 'अन्ध्राः शकाः पुलिन्दाश्च' मे

२ निमारी

रहने का स्थान—ये पशु नर्मदा नदी की घाटी मे तथा उसके ग्रास-पास मध्यप्रदेश मे पाये जाते है।

वशोत्पत्ति का इतिहास—जिस इलाके मे यह पशु पाये जाते हैं उस इलाके के ग्रासपास के डागी ग्रौर खिलारी पशुग्रो ग्रौर गिर नसल के सयोग से इनकी वश-वृद्धि हुई है। ये मिश्रित जाति के पशु है। यहा के पशु ज्यो-ज्यो पूर्व ग्रौर दक्षिण की ग्रोर गये, त्यो-त्यो ग्रधिक खराब होते गये है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग ग्रादि—इनका शरीर लम्बा होता है। इनमे गाय का वजन ६५०-७०० पौंड, बैल का ७५० पौड तथा साड का ८०० पौंड तक होता है। इनकी खाल पतली ग्रौर रोग्रा साधारण ग्रौर छोटा होता है। रग ग्रधिकतर गेरुए रग की भाति लाल होता है। शरीर पर कहीं-कही सफेद ग्रौर काले धब्बे भी होते हे। कमर सीधी, पेट साधारण तथा दोनो तरफ बाहर को फैला हुग्रा परन्तु गहरा नही होता। छाती बीच के दर्जे की साधारण होती है। सिर ग्रौर माथा थोडा उभरा हुग्रा होता हैं। इनके सीग खिलारी ग्रौर गिर के बीच के होते है। सिर के बाहरी सिरे से निकल कर ऊपर की ग्रोर बाहर की तरफ उठे होते है ग्रौर सिर पर पीछे की तरफ घूम जाते है। चेहरा लम्बा होता है। ग्राख साधारण तथा कुछ मिची हुई सी होती है। नाक साधारण भारी होती है। गलकम्बल बहुत तो नही परन्तु ऊपर तक लटकवा ग्रौर जबडे के नीचे के भाग तक फैला हुग्रा होता है। थुई, खास-कर साडो की, खासी ग्रच्छी ग्रौर विकसित होती है। कूल्हे विशेष विक-सित नही होते। ऐन छोटे, थन नजदीक-नजदीक ग्रौर गुच्छेदार होते है। पूछ पतली, लम्बी ग्रौर गुच्छेदार होती है। मूतना बीच के दर्जे से छोटा परन्तु लटकवा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का ग्रसर—यहा तापक्रम प्राय ४०° से ११७° फा० तक होता है ग्रौर वर्षा ४० इच के करीब होती है। यहा

जिझौति या जझौति

कालञ्जर के साथ चन्देलो का भी पर्याप्त संबन्ध रहा है। जिझौति देश के प्रसङ्ग के कारण यहाँ इन लोगो का उल्लेख आवश्यक हो गया है। इतिहासवेत्ता 'जिझौति' को बुन्देलखण्ड का प्राचीन नाम बताते है। अलबरूनी की भारत यात्रा के आधार पर कनिंघम ने 'जझौति' को चन्द्रात्रेय या चन्देलो का राज्य बताया है। इस राज्य की राजधानी महोबा (<महोत्सवनगर) और खजुराहो (<खर्जूरवाहः) थे[1]।

जो देश चन्देलो के अधिकार मे रहा वह धसान नदी के पूर्व मे और विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिण मे था। उत्तर मे वह यमुना नदी तक और दक्षिण मे केन नदी के उद्गम स्थान तक फैला था। केन नदी इस देश के मध्य से बहती है। महोबा तथा खजुराहो इसके पश्चिम मे और कालञ्जर तथा अजयगढ़ इसके पूर्व में है। इस प्रदेश मे आजकल के बाँदा और हमीरपुर जिले तथा चरखारी छत्रपुर, विजावर, जैतपुर, अजयगढ़ और पन्ना की रियासते है। चन्देल राजाओ ने अपनी उन्नति के दिनो मे इस प्रान्त की सीमा पश्चिम मे बेतवा नदी तक बढ़ा ली थी[२]। बुचनन् की सूचना के अनुसार कनिंघम ने लिखा है कि जहाँ-जहाँ तक जझौतिया ब्राह्मण फैले है वहाँ तक जझौति देश जानना चाहिए। पर इसका यह अर्थ नही कि इन्ही लोगो के नाम पर इस देश का नामकरण हुआ[3]। इसी सीमा में चन्देली के आसपास जझौतिया बनियाँ

---

1. Epigraphia Indica Vol. I, P. 218 (Cunningham's Ancient Geography of India)

२. गोरेलाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ४१, ४२.

3. But these are also the limits of the ancient country of the Jajhotia Brahmans, which according to Buchanan's information extended from the Jumna on the North to the Narbada on the south, and from Urcha (ओरछा) on the Betwa river in the west, to the Bundel Nal ? (Khand) on the east. The last is said to be a small stream which falls into the Ganges near Banaras and within two stages of मिर्जापुर during the last twenty five years I have traversed this tract of

(>विज्जाक) था। शिलालेखो में नन्नुकदेव (वि० सं० ८५७) से पहले के राजाओ का कोई वर्णन नही मिलता। ह्वेनत्साग (सातवी शताब्दी) के समय यह देश जझौति नाम से प्रसिद्ध था। अत: जेजा के साथ इसका सवन्ध जोड़ना कहाँ तक उचित होगा ? कुछ लोगो का यह भी कथन है कि वेदिक काल मे यजुर्वेद कर्मकाण्ड का पहले पहल यही अभ्युदय हुआ था। फलतः यह प्रदेश यजुर्होति कहलाया जिससे बिगड़कर जोजभुक्ति बना[1]। दुर्जनतोषन्यायेन यदि यह मत किसी प्रकार मान भी लिया जाए तो भी भाषाविज्ञान के नियम इसमे प्रवल विसंवाद उपस्थित करते है। यद्यपि गुहा और सिंह शब्दो के हकार का विकास गुफा तथा सिंघ के 'फ' एवं 'घ' मे संभव है तथापि होति का विकास भुक्ति के रूप मे होना नितान्त असमर्थ है। भुक्ति का विकसित रूप 'होति' हो सकता है।

स्कन्दपुराण के अनुसार इस देश का नाम जजाहुति था[2]। उस समय देश

---

१. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, ४२ पृष्ठ।

२. कामरूपे च ग्रामाणा नव लक्षाः प्रकीर्तिताः।
डाहले वेदसंज्ञे तु ग्रामाणां नवलक्षकम् ॥
नवैव लक्षा ग्रामाणां कान्तिपुरे प्रकीर्तिताः।
नव लक्षास्तथा चैव माचिपुरे प्रकीर्तिताः ॥
ओड्डियाणे तथा देशे नव लक्षाः प्रकीर्तिताः।
जालंधरे तथा देशे नव लक्षाः प्रकीर्तिताः ॥
लोहपुरे तथा देशे लक्षाः प्रोक्ता नवैव च।
ग्रामाणां सप्तलक्षं च पाम्बीपुरे प्रकीर्तितम् ॥
ग्रामाणां सप्तलक्ष च रटराजे प्रकीर्तितम्।
हरीआले च ग्रामाणा लक्षपञ्चकसंमितम् ॥
सार्धलक्षत्रयं प्रोक्तं द्रडस्य विषये तथा।
सार्धलक्षत्रय प्रोक्तं तथा वम्भणवाहके ॥
एकविंशतिसाहस्र ग्रामाणां नीलपूरके।
तथामलविषये पार्थ ग्रामाणामेकलक्षकम् ॥
नरेन्दुनामदेशे तु लक्षमेकं सपादकम्।
अतिलाङ्गलदेशे च लक्षः प्रोक्तः सपादकः ॥
लक्षाष्टदशसाहस्रं नवती द्वे च मालवे।
सयम्भरे तथा देशे लक्षः प्रोक्तः सपादकः ॥

मालवी नसल का साड

मालवी नसल की गाय

हजार और डाहल देश की नौ लाख वर्णित है। स्कन्दपुराण के उक्त वर्णन में कुछ अपभ्रंश (प्राकृत) नामो को सस्कृत बनाने का प्रयत्न किया गया है—गुर्जर + सौराष्ट्र > गुर्जरात्र > गुजरात।

जहाहुति[1] शब्द पर विचार करने पर उसकी पुरातनता स्कन्दपुराण के निर्माण से बहुत पहले की प्रतीत होती है। सस्कृत के किस शब्द का यह विकसित रूप होगा और उसे इस विकास तक पहुँचने मे कितने वर्ष लगे होगे यह विवेचनीय है। यद्यपि कुछ विद्वानो के मत से बुन्देलखण्ड का यह नाम ययाति के नाम पर चल पड़ा था—ययातिभुक्ति > जजाइहुति > जजाहुति > जझौति या जिझौति तथापि साक्ष्यो के अभाव मे इसे मान्यता देना सङ्गतिकर नही होगा।

निष्कर्षत: जजाहुति जझौति जिझौति या जुझौति नाम कितना ही पीछे क्यो न खीचा जाए, 'पुलिन्द' से प्राचीन नही हो सकता। ऐतरेय ब्राह्मण के पुलिन्द और महाभारत के पुलिन्द देश से पुरातन स्कन्दपुराण का जजाहुति भला कैसे हो सकेगा !!

प्रान्तो से कुछ कम रहती थी। यदि पाम्बीपुर, < पद्मावती (ग्वालियर रियासत के डभोरा स्टेशन से बारह मील) को माना जाए तो कान्तिपुर > कुतवार (अहसन नदी के तट पर, ग्वालियर से बीस मील) के नौ लाख ग्राम विचारणीय होंगे।

१. जेजाभुक्ति—the ancient name of बुन्देलखण्ड, the kingdom of the चन्द्रात्रेयस् or the चन्देलस्. Its capitals were महोबा and खजुराह (Epigraphia Indica Vol. I, P. 218). कालिञ्जर was the capital of the चन्देलस् after it had been conquered by यशोवर्मन्. The name was corrupted into जहाहुति (Alberuni's India, Vol. I, P. 202) and जझौति.

cunningham's Ancient Geography of India, P. 481.

मझले और लम्बे कद के होते है और टागे शरीर के अनुपात से छोटी, बिल्कुल सीधी तथा मजबूत होती है। गाय का वजन ६५०-७०० पौंड तथा साड का ८०० पौंड तक होता है। इनकी खाल पतली होती है। रोआ छोटा और चमकीला होता हे। गाय और बैल सफेद रग के होते है, परन्तु साड की गर्दन और थुई काले रग की होती है। इनकी कमर बिलकुल सीधी, पेट बाहर को फैला हुआ, परन्तु सब तरफ से एकसार और चौकोर-सा होता है। छाती खासी फैली हुई होती हे। इनका सिर छोटा और चौडा होता है। माथा चौडा और बीच मे दबा हुआ गड्ढे जैसा होता है। इनके सीग मजबूत, मोटे, छोटे, गोलाकार, ऊपर को उठकर आगे को मुडे हुए होते हैं। चेहरा कम लम्बा और चौडा होता है। आखे बीच के दर्जे की होती हे। नाक अच्छी विकसित, कान मोटे, छोटे तथा नोकीले होते है। गर्दन छोटी, चौडी तथा मजबूत होती है। झालर खूब बडी और लटकवा तथा छाती से जबडे तक फैली होती है। थुई अच्छी विकसित होती है। कूल्हे मजबूत और भरे होते है। ऐन और थन दोनो छोटे होते है। पूछ छोटी और भरी गुच्छेदार होती है। मूतना छोटा और खिचा हुआ होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा तापक्रम प्राय ४५° से ११०° फा० और वर्षा करीब २७ इच प्रतिवर्ष होती है। ये पशु प्राय भारत के निचले इलाके के उस भाग मे पाये जाते है जहा सिचाई की सुविधा नही है परन्तु वर्षा खासी होती है। इस इलाके मे चरने की अच्छी सुविधा है और धरती प्राय चिकनी होती है। बरसात के बाद सूखने पर तडक जाती है। उसमे ज्यादातर कपास बोई जाती हे। इस इलाके मे खनिज पदार्थो की विशेष कमी नही है, इसलिए यहा के पशुओ का विकास अच्छा हुआ है और वे स्वस्थ तथा खूब काम करनेवाले होते है, परन्तु दूध कम देते है।

गाय और बैल के गुण—गाये दूध कम देती है, यहा तक कि अक्सर उन्हे दुहा भी नही जाता। बहुत अच्छी गाय २-३ सेर तक दूध देती

जिला) तक था। विन्सेण्ट ए. स्मिथ के अनुसार 'बुन्देलखण्ड से दक्षिण का प्रान्त, जो आजकल मध्यप्रदेश के चीफ कमिश्नर के शासन मे है, करीव-करीव पुरातन चेदि देश ही है[1]।' विन्सेण्ट साहब ने जिझौति (बुन्देलखण्ड) से चेदि को विलकुल पृथक् वताया है[2]। राजा धङ्ग के राज्यकाल मे जिझौति की सीमा चेदि देश तक वतायी गयी है[3]।

पुलिन्ददेश अटवी-राज्य था। इसी कारण नृपति पुलिन्दो पर विजय पाने की अपेक्षा उनसे पराजित होना श्रेयस्कर समझते थे। यद्यपि अनेकधा पुलिन्ददेश का नाम मिटाने का प्रयत्न किया गया तथापि पुलिन्दो की क्रान्तिकारिता और लड़ाकूपन ने उसे जीवित रखा। द्वितीय कारण, चेदि और कारूष से उसकी पुरातनता है। वाल्मीकीय रामायण मे सुग्रीव ने देश-देशान्तरो का वर्णन करते समय चेदि और कारूप देशो की चर्चा नही की (द्रष्टव्य किष्किन्धाकाण्ड ४०-४३ अध्याय, गीता-प्रेस संस्करण)। वहाँ पूर्व दिशा के स्थानो के वर्णन-प्रसङ्ग मे ब्रह्ममाल, विदेह, मालव, काशी, कोसल, मागध महाग्राम, पुण्ड्र और अङ्ग देशो का नामोल्लेख किया गया है। दक्षिण दिशा मे मेखल, उत्कल, दशार्ण नगर, विदर्भ, ऋष्टिक,

---

1. The extensive region, farther to the south, which is now under the administration of the chief commissioner of the central provinces, nearly corresponds with the old kingdom of Chedi.

—Vincent A. Smith : The Early History of India, P. 310.

2. The ancient name of the province between the Jumna and Narmada, now known as Bundelkhand, and partly included in the united provinces of Agra and Oudh, was Jejakabhukti.
—Vincent A. Smith : The Early History Of India, P. 310.

३. आकालञ्जरमा च मालवनदीतीरस्थिताद् भास्वतः
कालिन्दीसरितस्तटादित इतोप्याचेदिदेशावधेः।
[आ तस्मादपि ?] विस्मयैकनिल [या] द् गोपाभिधानाद् गिरे-
र्यः शास्त क्षि [ति] मायतोर्जितभुजव्यापारलीलाजि [ताम्] ॥४५॥
सवत्सरदशशतेपु एकादशाधिकेषु संवत् १०११ उत्कीर्णा चेय रू [पका]
र................ ...।
—Khajuraho Inscription No II (Epigraphia Indica, Vol. I, P. 126)

सिर, माथा, चेहरा, आख, नाक और कान आसपास के इलाके के पशुओ से मिलते-जुलते होते है। इनकी गर्दन छोटी और देखने मे मजबूत होती है। गलकम्बल मझले आकार का और लटकवा होता है। थुई काफी विकसित और डील-डौल की अपेक्षा थोडी बडी होती है। कूल्हे साधारण होते है। ऐन और थन कम विकसित और छोटे होते है। पूछ मझले साइज की और मोटी होती है। मूतना आसपास के इलाके के पशुओ जैसा ही होता है।

जलवायु, भूमि और खानपान का असर—इस इलाके मे सर्दी ३५° फा० और गर्मी ११४ फा० तक होती है। यहा वर्षा-ऋतु मे ४०-६० इच तक अनिश्चित रूप से वर्षा होती है। खेतो की भूमि भी कमजोर है। यहा ज्वार, तिलहन, गेहू, धान इत्यादि की खेती होती है। पशु प्राय चराई पर रहते है। इस इलाके मे लगभग २-३ एकड प्रतिपशु के हिसाब से चराई की भूमि मिलती है, परन्तु यहा खनिज पदार्थो की कमी होने के कारण पशुओ का अस्थिपजर और डील-डौल पूर्णरूप से विकसित नही हो पाता और गाये भी कम दूध देती है।

गाय और बैल के गुण—गाय इतना कम दूध देती है कि उन्हे दुहा ही नही जाता। यदि गाय का बछडा होता है तो सारा दूध उसीको पिला देते है। अच्छी गाय २-३ सेर दूध दे देती है। गाय पहली बार ४-५ वर्ष मे ब्याती है। बाद मे १॥-२ वर्ष मे ब्याती है। बैल छोटे कद के और मजबूत होते है और इस इलाके मे खेती और गाडी खीचने के काम मे कुशल होते है। वास्तव मे यहा गो-पालन बैलो को उत्पन्न करने के लिए ही किया जाता है। बैलो की कमी के कारण अब यहा बैलो का स्थान धीरे-धीरे भैसे ले रहे है।

उन्नति के उपाय—इन पशुओ की उन्नति के लिए इनकी खिलाई-पिलाई खूब अच्छी तरह करनी चाहिए और खनिज पदार्थो की कमी को दूर करने का प्रयत्न होना चाहिए। डागी, निमारी, खामगाव तथा अन्य किसी अधिक वर्षा के इलाके के छोटे कद की और अधिक दूध देनेवाली

ग्यारहवी शताब्दी से चेदिदेश दो राज्यो मे विभक्त हो गया था। पश्चिमीय चेदि (= डाहल) की राजधानी त्रिपुरी (> तेवर) थी तथा पूर्वीय चेदि या महाकोसल की राजधानी रत्नपुर थी[1]। विन्सेन्ट ए० स्मिथ महोदय का यह विवरण बताता है कि चेदिदेश छत्तीसगढ़ तक निर्विवादरूपेण फैला था। डाहल और महाकोसल उसके पश्चिमीय तथा पूर्वीय भाग-मात्र थे। विस्तृत ज्ञातव्यता के लिए देखिए 'महाकोसल[2] अथवा छत्तीसगढ़'।

बुद्धकाल मे चेदि, चेति या चेतिय नाम से भी प्रसिद्ध था। टॉड (राजस्थान, I, 43 note) इसे चन्देरी (ग्रीको की चन्द्रावती या सन्द्रावती) बताते है। यह शिशुपाल की राजधानी थी। इसके भग्नावशेष ललितपुर से अट्ठारह मील पश्चिम में स्थित आधुनिक चन्देरी से आठ मील उत्तर-दक्षिण मे पाये जाते हैं। यह 'आइन्-इ-अकबरी' मे दुर्गयुक्त सुविशाल प्राचीन नगरी के रूप मे वर्णित है। डॉ० फ्यूरर्, जनरल् कनिंघम और डॉ० ब्यूलर् के अनुसार डाहल मण्डल (नर्मदा तट पर) अथवा बुन्देलखण्ड पुरातन चेदि था। गुप्त राज्य मे कालञ्जर चेदि की राजधानी था। महाभारत के समय इसकी राजधानी शुक्तिमती थी। जबलपुर से तेरह मील दूर अवस्थित तेवर (< त्रिपुरी) भी इसकी राजधानी रही[3]।

शुक्तिमती नदी कोलाहल पर्वत तथा चेदि की पुरानी राजधानी (आधुनिक बुन्देलखण्ड) से होकर बहती है। (महाभारत, आदि पर्व ६३ वाँ अध्याय)। जनरल कनिंघम् इसे महानदी (कटक, छत्तीसगढ़) और बेग्लर महोदय सक्रि (बिहार) बताते है[4]। पार्जिटर[5] इसे केन (< कर्णवती) नदी मानते है। यह पन्ना और बिजावर के मध्यवर्ती पहाड़ो से होती हुई बुन्देलखण्ड मे बहती है। शुक्तिमती का अपभ्रंश केन नही हो सकता। बुन्देलखण्ड मे शुक्तिमती से साम्य रखने वाला कोई नगर भी नही है। यह 'सक्ति' से मेल खाता है। सक्ति बिलासपुर से दक्षिणपूर्व मे स्थित है। हैहयो का प्राचीन राज्य भी इसी ओर रहा।

उक्त समस्त मत-मतान्तर साधित करते है कि ललितपुर और टीकमगढ़ क्षेत्र भी कभी चेदियो की राजधानी रहे। बाद में वे कालञ्जर तक बढ़ गये। पुलिन्दो

1. Vincent A. Smith : The Early History Of India, P. 390.

2. Archæological Survey Of India Reports, Vol. XVII, P. 68–87.

3–4. Nundo Lal Dey · The Geographical Dictionary.

5. J A. S. B. 1895, I, P 255.

के दर्जे का होता है। आख और नाक साधारण होती है। कान छोटे और लटकवा होते है। गर्दन छोटी, मोटी और भारी होती है। गल-कम्बल छोटा और लटकवा होता है। थुई अच्छी और खासी विकसित होती है। कूल्हे चौडे, मोटे और भद्दे होते है। ऐन और थन कम विकसित होते है। पूछ छोटी और भद्दी तथा बीच के नाप की एव गुच्छेदार होती है। मूतना छोटा और खिचा हुआ होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—इस इलाके मे रेतीली और हल्की दुमट और पथरीली धरती के अलावा, कपास के इलाके की काली मिट्टीवाली भूमि भी होती है। यहा का तापक्रम ३५° से ११४° फा० तक होता है और वर्पा ५० इच से अधिक होती है। यहा अधिकतर धान की खेती होती हे। यहा गोचर कम और निकम्मी जाति के मिलते है। यहा गर्मियो मे अधिक गर्मी पडती है। परन्तु गेहूं और द्विदल जाति की फसले भी होती हे। यहा वाछित खनिज पदार्थो की भी कमी है। इस इलाके मे पशुओ को भरपूर चारा नही मिलता। इसलिए इनके अस्थि-पजर तथा शरीर का विकास नही हो पाता है और गाये कम दूध देती है।

गाय और बैल के गुण—गाय वहुत कम दूध देनेवाली होती है। ये सेर-दो सेर दूध भी मुश्किल से देती है। ये पहले ४-५ वर्ष मे व्याती है, वाद मे लगभग १॥ वर्प मे व्याती है। वैल अपने डील-डौल के अनुपात मे मजवूत और साधारण काम करनेवाले होते है।

उन्नति के उपाय—इस इलाके की स्थिति पशुपालन के लिए विशेप अनुकूल नही हे। इसलिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इनका प्रवन्ध और खिलाई-पिलाई अच्छी होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त यहा पशु-विशेपज्ञो की राय से समुचित चुनाव और छटाव की प्रणाली से डागी या निमारी जाति की अच्छी दूध देनेवाली गायो का आयात करके यहा के पशुओ से सयोग कराकर इस इलाके के पशुओ की उपयोगिता वढाई जा सकती है।

रत्नेश के पुत्र जाजल्लदेव[1] (संवत् ८६६) ने कान्यकुब्ज महीप (गोविन्दचन्द्र[2]) और जेजाभुक्तिक-नृप (कीर्तिवर्मदेव[3] ?) के साथ अपनी मैत्री का उल्लेख कराया है। उस समय चेदि (त्रिपुरी) का शासक यशःकर्ण अथवा गयकर्ण था।

इस क्रम मे सबसे महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय बात यह है कि हैहय-वशीय राजाओ के शिलालेखो मे 'पुलिन्दो' का उल्लेख कही भी नही मिलता। यदि वे पुलिन्द देश (जेजाकभुक्ति और अब [उत्तरी] बुन्देलखण्ड) के शासक होते तो निश्चयतः उनकी मुठभेड़ पुलिन्दो से हुई होती। चन्देलवंशीय राजाओ की उनसे शताब्दियों तक मुठभेड़ होती रही। पर उन्होंने इस बात का उल्लेख शिलालेखो मे तब तक नही कराया जब तक पुलिन्दो पर विजय प्राप्त नही कर ली। ध्यान रहे, शिलालेखो मे पराजय की चर्चा नही रहती। वे तो विजेताओ के विजय-चिह्न या गौरव-गाथा के सकीर्तक होते है। कई शताब्दियो के अनन्तर त्रैलोक्यवर्मा के समय उनके छोटे भाई आनन्दवर्मा पुलिन्दो को वशीभूत कर सके। अजयगढ़ के शिलालेख मे इसकी चर्चा की गयी है[4]।

संक्षेपतः हैहय सीधे दक्षिण की ओर उतरते चले गये और समस्त दक्षिण कोसल (या महाकोसल) पर छा गये। रत्नपुर (विलासपुर) के आसपास का समस्त भूभाग उनके अधीन हो गया। उधर उड़ीसा तक उन्होने आधिपत्य स्थापित कर लिया। उनके द्वारा विजित क्षेत्रो मे कही भी पुलिन्द जाति या देश रहा होता तो उस पर विजय पाने की चर्चा शिलालेखो मे अवश्य मिलती। हैहयो के उत्तराधिकारी चेदीश उत्तर मे ललितपुर तक घुस सके। एकाध बार कालजर का किला भी हथिया लिया; पर वह अधिक समय तक उनके अधीन नही रहा। वैसे जिझौति (पुलिन्द) राज्य की उत्तरी सीमा चित्रकूट[5] तक उनके दबदबा के प्रमाण मिलते है। वत्स (प्रयाग) राज्य के अनन्तर बड़े

---

१. जाजल्लदेव का रत्नपुर-शिलालेख, २१वॉ श्लोक (Epigraphia Indica, Vol. I, P. 34–35)

2. Indian Antiquary, Vol. XV, P. 6.

3 Indian Antiquary, Vol. XVI, P. 202; Archæological Survey of India, Vol. XXI, P. 85

४, भोजवर्मा के समय का अजयगढ़-शिलालेख, २१ श्लोक (Epigraphia Indica, Vol. I, P. 334)

५ प्रेयान सर्वगुणाङ्कितप्रभुतया श्रीमानभूत् कोक्कलः ॥५॥

देती है। ये पहले ४-५ वर्ष मे व्याती है, वाद मे १॥-२ वर्ष मे व्याती है।
वैल काम करने मे अपने डील-डौल और कद के अनुसार अच्छे होते है।

उन्नति के उपाय—इस इलाके की स्थिति गो-पालन के अनुकूल है। इसलिए समुचित चुनाव और छटाव की प्रणाली के द्वारा प्रजनन का कार्य करना चाहिए। आवश्यकता होने पर पशु-विशेषज्ञो की राय से निमारी, डागी और साहावादी (गगातीरी) के चुनैता और छोटे कद के, परन्तु अधिक दूध देनेवाले पशुओ का सयोग कराया जा सकता है।

७ मध्यप्रदेश के तराई और धान के इलाको के पशु

रहने का स्थान—छत्तीसगढ के मैदानी भाग और आसपास के इलाके मे तथा मान्दरा, चादा, वालाघाट, रायपुर, विलासपुर, विहार और उडीसा के तटवर्ती इलाको तक तथा दक्षिण-पूर्व की ओर महानदी के आसपास तक ये पशु पाये जाते हे और भिन्न-भिन्न स्थानो पर अलग-अलग नामो से पुकारे जाते है।

वशोत्पत्ति का इतिहास—ये आसपास के इलाके के मिश्रित और विगडे हुए पशु है। ये गधो से कुछ ही वडे आकार के होते है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु वहुत छोटे डील-डौल और कद के होते है। गाय, वैल और साड का वजन स्थानीय परिस्थिति के अनुसार कमोवेश ३०० से ५०० पौड तक होता हे। इनकी खाल और रोआ मोटा और भद्दा होता है। ये सफेद, गहरे कत्थई और चितकवरे रग के होते है। कमर थोडी झुकी हुई होती है। पेट, छाती, सिर, माथा और चेहरा, आख, नाक, कान, गर्दन, गलकम्वल, थुई, कूल्हे, ऐन, थन, पूछ और मूतना इत्यादि आसपास के इलाके के विगडे हुए पशुओ के समान होते है।

जलवायु तथा खानपान का असर—इस इलाके मे सर्दी ३७° फा० तक होती है परन्तु गर्मी की ऋतु मे गर्मी ११७° फा० तक पडती है। वर्षा ऋतु मे इतनी अधिक वर्षा होती है कि चारो तरफ पानी-ही-पानी

प्रसिद्ध नाम का उल्लेख किया गया है। महाभारत काल मे त्रिपुरी चेदिदेश या चेदिनगरी के नाम से प्रसिद्ध नही थी। महाभारत (सभा० ३१।६०) मे उसका चेदिदेश से पृथक् वर्णन मिलता है।

संभवत: ऋग्वेद के चेदि का पुत्र चैद्य कशु महाभारत मे वसु (<कशु) नाम से उल्लिखित हुआ है। वहाँ 'उपरिचर' विशेषण अधिक है। ऋग्वेदोक्त चेदि शब्द देशवाचक नही किन्तु जनवाचक है। पण्डित श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय[1] पौराणिक वाङ्मय के प्रकाश मे वेदो की व्याख्या को असमीचीन और इतिहास-विरुद्ध बतलाते है। उनके मतानुसार चेदि बुन्देलखण्ड नही था।

ऋग्वेद का चेदि किसी प्रकार देशवाचक मान भी लिया जाए तो भी वह आधुनिक बुन्देलखण्ड के रूप मे पहिचाना नही जा सकता। चेदि-पुत्र चैद्य कशु ने सौ ऊँट और दस हजार गायो का दान किया था[2]। पन्ना और विजावर जैसे

---

1. If we were to be guided by the Purānas and the Abhidhānacintāmaṇi (?) in these matters, the whole Vedic literature would have to be explained in their light and all the characteristic Vedic myths and legends would then put on a different appearance altogether This would be an absolutely unhistorical method which no historian should ask us to follow. The Vedic texts themselves and not the Purānas should be chiefly used for interpreting the Vedas. It is thus that we know that the Gomatī mentioned in Rv. S., X, 75. 6, is the Gomal in Afghanistan and not the Gomatī in U. P. Failure to recognize this simple point has led to many mistakes in the interpretation of Vedic history and geography. We should not, therefore, assume that Vidarbha and Cedi in the Vedas meant Berar and Bundelkhand respectively

—Kshetres'achandra Chattopādhyāya : Indian Culture, Vol. III, P. 12.

२. ता इमे अश्विना सनीनां विद्यात नवानाम्।

यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत् सहस्रा दश गोनाम् ॥

ऋग्वेद ८ मण्डल, १ अध्याय, ५ सूक्त, ३७ मन्त्र।

किया जाय, जिससे उनका पेट भी भरे और आवश्यक खनिज पदार्थों की कमी भी दूर हो तथा स्वच्छ जल भी मिले, तो उनकी उन्नति हो सकती है।

उपसंहार

कालञ्जर से लेकर समस्त गोंड़वाना अत्यन्त प्राचीन काल मे पुलिन्ददेश था। विन्ध्याचल से लेकर दक्षिण का समस्त प्रदेश 'ऐतरेय ब्राह्मण' का उपान्त्य (=आर्यदेश की सीमा से बहिर्वर्ती) भाग माना गया है। पुण्ड्र, पुलिन्द, शवर, मूतिव तथा अन्ध्र इसी उपान्त्य-क्षेत्र मे रहते थे। पुण्ड्र (वंगाल) और अन्ध्र (आन्ध्र) का क्षेत्र निश्चतप्राय है। शेष भूदेश पुलिन्द और शवरो का आवास-स्थल था। शवर उड़ीसा (महानदी के आसपास) के शासक थे।

क्या गोड़ वस्तुतः पुलिन्द थे ! टॉलमी ने उन्हे 'फुलित (<पुलिन्द) गोडली' कहा है। इस देश को उन्होने 'पर्स फुलितरम्' वताया है। फुलित अधिक उत्तर मे रहते थे। आर्कियालॉजिकल् सर्वे (९ खण्ड, १५१ पृष्ठ) के अनुसार फुल्लित (<पुलिन्द) नाम पूर्णतः ग्रीक है। उसका अर्थ 'पत्र-वसन' ='पत्तो के परिधान वाला' होता है। वराहमिहिर पर्ण-शवरो की सूचना देते हैं[1]। अष्टम पृष्ठ पर की गयी पुलस्तिन् >पुलिस्त>पुलिन्द कल्पना रावणवशज गोड़ो को पुलिन्दो से भी संबद्ध वतलाती है। चन्देलघराने की दुर्गावती का विवाह गोड़ राजा दलपतिशाह के साथ हुआ था। गोड़ राजा

---

1. This conclusion, however, refers only to the rulers of the country, and not to the bulk of the population, which in even in the time of ptolemy would appear to have been the aboriginal Gond. In his day the large district at the head of the Nanaguna, or Tapti river, was occupied by the Condali or Gondali, a name which has been generally identified with that of the Gondas. But their country is described as **Pars phullitarum,** the **Phullitae** themselves being placed **more to the north.** I take this name to be a pure Greek one, FULLEITAI, descriptive of the "leaf-clad" aborigines Varāha Mihira notices the Parna-Sabaras, or "leaf-clad Gonds", in the time of Ptolemy, and that there are the people intended by his Phullitæ-Gondi.

Archæological Survey of India, Vol. IX, P. 151.

इस इलाके के लोग वशोत्पत्ति और पशुओ की उन्नति के हुनर को खूब समझते हैं। अत उन्होने यहा के पशुओ मे दुहरे उद्देश्य से प्रजनन का कार्य किया और उन्हे काकरेज नसल को कायम करने मे सफलता भी मिली।

इस इलाके के जगलो मे ऐसे लोग रहते है जिनका पशुपालन ही मुख्य पेशा है। ये लोग रवाडी कहलाते है तथा अपने पशुओ को चराने के लिए घास की तलाश मे एक स्थान से दूसरे स्थान पर फिरते रहते है। पशु-पालन की कला मे ये लोग वडे निपुण होते है। इस इलाके के निवासी दूध, दही, छाछ आदि के शौकीन होते है और उनका निर्वाह प्राय खेती-वाडी और पशु-पालन पर ही निर्भर करता है। इसलिए ये लोग अपने पशुओ की खिलाई-पिलाई तथा देखभाल खूब अच्छी तरह करते है।

इस इलाके मे दिन-प्रतिदिन गोचर-भूमि कम होती जा रही है। पशु केवल चराई पर रहकर भली प्रकार नही पनपते, खास करके यह समस्या रवाडी लोगो के सामने उपस्थित है। इस स्थिति को हल करने का एक ही उपाय दिखाई पडता है। वह यह कि आजकल की खेती की पैदावार को कम किये विना पशुओ के लिए पर्याप्त मात्रा मे उत्तम चारा उत्पन्न किया जाय। यह सिचाई की सुविधा प्राप्त करने से वखूवी हो सकता हे।

यहा पशु-पालन की स्थिति वहुत अच्छी हे। केवल महाराष्ट्र के निकटवर्ती इलाके मे कुछ ऐसी स्थिति हे जिनके कारण वहा अपेक्षाकृत अच्छे पशु नही मिलते। इन स्थितियो को दूर करके पशु-प्रजनन का कार्य विधिवत् करने से वहा के पशु भी उन्नत किये जा सकते हे। सौराष्ट्र की 'जाफरावाद' जाति की भैसे भी भारत मे प्रमुख नसल की भैसो मे से है। ये खूब दूध देती हे। ये वहुत वडे और भारी डीलडौल की होती हैं। गायो के मुकावले मे ये ड्योढा-दुगुना खाती है। इनकी नर-सतान का भरपूर उपयोग इस इलाके मे असम्भव है क्योकि यहा पाये जानेवाले बैल खेती और अन्य कार्यो के लिए इन भैसो से कही अच्छे

वाजपेय, वृहस्पति-सव और चार अश्वमेध यज्ञ किये थे। उसी वंश के भारशिव महाराज श्री रुद्रसेन ने दस अश्वमेध यज्ञ किये[1]। संभवतः इसी कारण कालान्तर (चौथी-पांचवी शताब्दी) मे इस प्रदेश को लोग यजुर्हुति नाम से पुकारने लगे। इसका विकसित रूप होगा जझौति। यद्यपि यकार के कारण जकार इकारविशिष्ट (जिझौति) भी हो सकता है तथापि स्कन्दपुराण के 'जहाहुति' पर ध्यान देने से इसका निवारण सहजतः हो जाता है। सातवी शताब्दी मे ह्वेन त्साङ्ग ने जझौति का उल्लेख किया है। जयशक्ति>जेजाक>जेजा नवी शताब्दी मे हुआ। इसके वंशज परवर्ती राजाओ ने इस प्रदेश का नाम 'जजा' जेजा के नाम से संवद्ध करना चाहा। ध्यान रहे, जयशक्ति का नाम किसी भी शिलालेख में 'जजा' नही है। 'जेजाभुक्ति' का विकास 'जिझौति' होगा जझौति नही। इसी संक्रान्ति के कारण कुछ लोग जझौति, जझओति कहते है और कुछ व्यक्ति जिझौति बोलते है। इस साकर्य मे पड़कर कुछ जझौतिया ब्राह्मण भी अपने को 'जिझौतिया' कहते पाये जाते है। इस प्रदेश के पूर्वोक्त नाम का एक तृतीय विकास भी पाया जाता है—'जुझौति' (<जुझारसिंह ?)।

जब कीर्तिवर्मा को डाहल के कर्ण ने परास्त कर जझौति का राज्य ले लिया तब गोपाल नामक ब्राह्मण-सेनापति की सहायता से उसने अपना खोया राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। जझौति के उक्त ब्राह्मण-राजवंश के लोग चन्देलो से मिलकर उनकी सहायता करते रहे। पुलिन्दो ने ऐसा कभी नही किया। चन्देल-राज्य के शिथिल हो जाने पर वे फिर उठे और उन्होने अपने राज्य का विस्तार किया। परन्तु वे अधिकाशतः परस्पर झगड़ते रहते थे। अपनी शक्ति का अपव्यय गृह-कलह मे कर देते थे। अत. पुनः प्राप्त राज्य भी अधिक समय तक कायम नही रख सके। वे प्रकृतितः रक्षित अपने मूलनिवास की ओर सिमट आये।

ए० कनिंघम कथासरित्सागर के आधार पर शवर जाति को पुलिन्द और

---

१. वेम्वार-वासकादग्निष्टोमाप्तोर्य्यामोक्थ्यषोडश्यतिरात्र - वाजपेय - वृहस्पति-सव-साद्यस्क-चतुरश्वमेधयाजिनः विष्णुवृद्धसगोत्रस्य सम्राड् वाकाटकानां महाराज-श्रीप्रवरसेनस्य सूनोस्सूनोः अत्यन्त-स्वामि-महाभैरवभक्तस्य अंसभारसन्निवेशित-शिवलिङ्गोद्वहन-शिव-सुपरितुष्ट-समुत्पादित-राजवंशानां पराक्रमाधिगत-भागीरथ्य-मलजल-मूर्ध्नाभिषिक्ताना दशाश्वमेधावभृथस्नाताना भारशिवानां महाराज-श्रीरुद्रसेनस्य...।

Balaghat Plates of Prithvisena II (Epigraphia Indica, Vol. IX, P. 270).
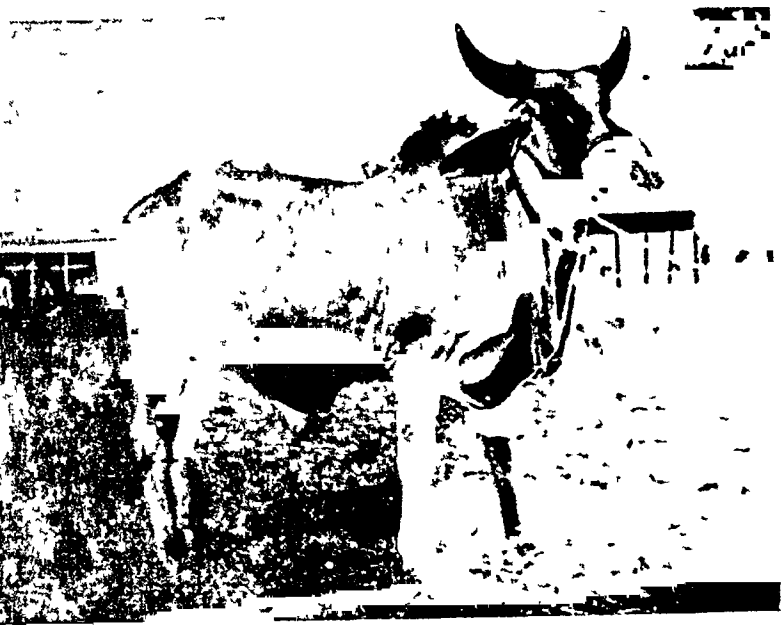
काकरेज नसल का साड

काकरेज नसल की गाय

'पुण्यतीर्थोदक से स्नान करके' और 'पुण्य के लिए' पदो पर ध्यान देने पर राउत अभि को निश्चयतः क्षत्रिय नही कहा जा सकता। 'कृतवीर्यातिशये प्रसादे' अर्थ पर ध्यान देने पर तथा केवल काश्यपगोत्रीय होने पर उसे निश्चयतः ब्राह्मण भी नही कहा जा सकता। अभी हम केवल इतना कह सकने मे समर्थ है कि राउत अभि किसी राजवंश से संवद्ध था। तुलनीय चौहानवंश की एक शाखा भदौरिहा की छठी उपशाखा 'रावत' तथा हिमालय की तराई में रहने वाली थारू जाति के भेद महाउत की पदवी 'राउत'।

बुन्देलखण्ड मे 'राउत' नाम या उपाधि आज उच्च दृष्टिकोण से नही देखी जाती[1]। यह सामान्यतः सोंरो की वाचक है। इससे सुस्पष्ट है कि सोर बुन्देलखण्ड मे कभी शासक नही रहे और न वे पुलिन्दों के पर्याय ही थे। टालमी ने पोउलिन्दै =पुलिन्द शब्द को ग्रीक नही बताया किन्तु 'अग्रिओफगोइ' को ग्रीक विशेषण या उपाधि कहा है[2]।

'टालमी के भूगोल पर अनुसन्धान' नामक पुस्तक मे [सुवर्ण द्वीप (Golden

---

सोंधीसंग्रामे दस्युहडवर्म्मयुद्धे कृतवीर्यातिशये प्रसादे राउत-अभिनाम्ने शासनीकृत्य प्रदत्तः।

Charakhārī Plate of Vīravarma Deva (Epigraphia Indica, Vol. XX, P. 133).

1. Just as in some districts an inferior Rājpūt is called a Rāwat, the corruption of the name betokening the corruption of the caste.

—W. Crooke B A. : The Tribes And Castes, Vol. II, P. 66.

2. The 'Poulindai, Agriophagoi are described as occupying the Parts northward of those just mentioned. Pulinda is a name applied in Hindū works to a variety of aboriginal races. Agriophagoi is a Greek epithet, and indicates that the Pulind was a tribe that subsisted on raw flesh and roots or wild fruits. In Yale's map they are located to the N. E. of the Raṉ of Kachh, lying between the Khatriaioi in the north and Larikē in the south. Another tribe of this name lived about the central parts of the vindhyas.

Ancient India (As described by Ptolemy), P. 157.

है। इनकी खाल बीच के दर्जे की पतली होती है। शरीर पर रोआ भी काफी होता है, परन्तु विशेप वडा नही होता। रग सफेद और भूरा होता है। खासकर नर-पशुओ के माथे, गर्दन, थुई तथा शरीर का अगला हिस्सा भूरे रग का और कभी-कभी गहरे भूरे रग का, हल्का काले रग जैसा या लोहिया रग का होता है। खुरो के ऊपर का हिस्सा भी अक्सर भूरे या लोहिया रग का होता है। कमर सीधी और पीछे की तरफ चौडी होती है। पेट दोनो तरफ अच्छा फैला हुआ होता है। छाती चौडी और भरवा होती है। सिर चौड़ा होता है। इस जाति के पशुओ की यह विशेपता है कि ये प्राय सिर को ऊचा उठाये रखते है और वडे चौकन्ने होते है। माथा चौडा तथा बीच मे कुछ दवा हुआ और गहरा होता है। इनके सीग भारत के सव पशुओ के मुकावले मे भारी होते हैं। ये नीचे से वहुत मोटे तथा दोनो तरफ वाहरको निकलते हुए ऊपर को गोलाकार रूप मे उठकर एक-दूसरे की तरफ मुडे हुए होते हें और आखिर मे नोकीले हो जाते हैं। ये देखने मे अर्द्ध-गोलाकार होते है। चेहरा लम्बा होता है। आख वडी चेतन और चमकदार होती है। नाक खूव विकसित होती है। कान लम्बे, चौडे और कम-लटकवा होते हैं। गर्दन विशेष लम्वी नही होती, परन्तु मजवूत और मोटी होती है। खासकर साड की गर्दन वहुत मोटी होती है। गलकम्वल सावारण माप का लटकवा होता है और विशेप फैला नही होता। थुई अच्छी विकसित होती है। खासकर साडो की थुई वहुत भारी और ऊपर को उठी हुई होती है। कूल्हे चौडे और मजवूत होते हैं। ऐन वडे और चारो तरफ फैले हुए होते है। थन प्राय वडे और एकसार होते है। इनकी पूछ सीधी, लम्वी और काले रग की गुच्छेदार होती हे। मूतना बीच के दर्जे का लटकवा होता है। इस जाति के पशुओ की यह विशेषता है कि ये वडे चौकन्ने और चचल होते हैं। ये प्राय अपना सिर ऊचा रखते है। पशुओ के रेवड मे इस जाति का पशु मिला दिया जाय तो ऐसा मालूम होता हे जैसे वह सवका सरदार है।

वनेला शब्द में संबन्ध-सूचक 'एल' प्रत्यय नही है। वह वनालय (वनम् आलयो वर्तते यस्य सः=वन है घर जिसका वह वनालय) का विकसित रूप है। वनालयः>वनायला (य>इ>ए, आ+ए=ऐ)>वनेला, वनैला। बुन्देला शब्द विन्ध्य या विन्ध्यालय से विकसित नही है। विन्ध्य का विकास बिन्द[1] और विन्ध्यालय का वेंदेले[2] होगा। मत-मतान्तर प्रकरण मे बताया जा चुका है कि पुलिन्द से बोलिन्द>बोन्दिल और बुन्देल शब्दो का विकास हुआ है। मद्रास की ओर बोन्दिली जाति[3] पायी जाती है। उक्त जाति के लोग अपने को राजपूत[4]

---

1. Bind.—A non-Aryan tribe in the Estern Districts of the Division, and with scattered colonies elsewhere. The name is said to be derived from the Vindhya hills (विन्ध्य पर्वत) of Central India.

W. Crooke. The Tribes And Castes, Vol. II, P. 106-107.

२. तुलनीय दाक्षिणात्य लडाकू वेदार जाति (अनन्तपुर जिला) तथा विन्धोल्लु जोगी-वंश (E. Thurston: Castes And Tribes of Southern India.)

3. Bondili.—In the Madras Cencus Report, 1891, the Bondilis are "said to derive their name from Bundelkhand. They claim to be Rājpūts, but appear to have degenerated. The S'ivaites of this sect are said to bury their dead, while the Vishnavaites burn. In the Kadri Taluk of Cuddapah all are said to bury. The Bondilis of the North Arcot district are described by Mr. H. A. Stuart as being "foreigners from Bundelkhand, from which fact their name originates and of various Vais'ya and S'ūdra castes; the former having the termination Lāl to their names, and the latter that of Rām. Many of the S'ūdra Bondilis, however, improperly take the title Singh, and say they are Ks'atriyas, that is Rājpūts."

—E. Thurston. Castes And Tribes of Southern India, Vol I, P. 257-258.

४. पीछे बताया जा चुका है कि किसी भी जाति के राजा का पुत्र राजपुत्र>राजपूत कहलाने का अधिकारी है। 'प्राचीन काल में राजाओं का गोत्र वही माना जाता था जो उनके पुरोहित का होता था'—(महा-महोपाध्याय गौरीशकर हीराचन्द ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास,

२ गिर

रहने का स्थान—यह दक्षिणी सौराष्ट्र (काठियावाड) के, खासकर गिर नामक जगलो और जूनागढ के इलाके मे एव पश्चिमी राजपूताना, बडौदा और गुजरात प्रदेश के उत्तरी भाग मे पाये जाते हैं। ये वैसे तो बम्बई तक मिलते है परन्तु वे मूल गिर नस्ल के पशु नही होते, बल्कि मिश्रित और देखने मे गिर से मिलते-जुलते होते है।

वशोत्पत्ति का इतिहास—यह भारत के गाय-बैलो की सबसे पुरानी नसल है और मूल नसलो मे एक मुख्य नसल है। इस जाति के पशुओ की सन्तान बराबर अपने माता-पिता की भाति होती है। अभी तक यह निश्चित रूप से पता नही लगा है कि इस जाति के पशुओ मे किसी बाहरी इलाके के पशुओ का सयोग हुआ है या नही।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु बडे भारी और लम्बे, परन्तु डील-डौल मे अपेक्षाकृत कुछ ठिगने होते है। इनमे गाय का वजन लगभग ९००-१००० पौंड, बैल का १०००-११०० पौड और साड का १२०० पौड तक होता है। इनकी खाल पतली, ढीली और रोआ बारीक होता है। इनका रग अधिकतर चितकबरा, सफेद-काला और गेरुआ होता है। सफेद रग पर प्राय अन्य रगो के चकत्ते और दाग होते हैं। कमर सीधी और चौडी होती है। पेट दोनो तरफ खूब फैला हुआ, भारी और बडा होता है। छाती खूब बडी, चौडी और गहरी होती है। सिर चौडा, मामूली-सा उठा हुआ और पीछे की ओर थोडा फैला हुआ होता है। माथा खूब चौडा और उभरा हुआ होता है। ऊपर से चौकोर-जैसा तथा पीछे को फैला होता है। इनके सीग बडे मजबूत, नीचे से मोटे और जैसे-जैसे आगे को बढते जाते है पतले होते जाते है, परन्तु सिरे पर नोकीले नही होते। ये पीछे की ओर थोडा मुडकर बाहर को होते हुए और थोडा ऊपर गोलाकार होकर पीछे को मुड जाते है। ये छोटे होते है। चेहरा लम्बा, कुछ पतला और मुह के पास चौडा तथा गोल-सा होता है। आखे अच्छे साइज की और चमकीली होती है, परन्तु भौहे भारी होती

बुन्देलखण्ड की प्राचीनता

में

रू

पा

न्त

क

कुछ शब्दों के विकास का

इतिहास

'पुलिन्द' अनार्य नहीं किन्तु व्रात्य क्षत्रिय थे। अतः उनकी भाषा
में अनार्य-भाषा के बीज ढूंढ़ना समीचीन नहीं होगा। आदि काल
में जनभाषा का बोलबाला रहता है। क्रमशः वही जनभाषा
साहित्यिक भाषा के रूप मे माँज-सँवार कर प्रस्तुत कर दी
जाती है। कालक्रमेण उस साहित्यिक भाषा का भी
प्राकृत-अपभ्रंश के रूप से विकास होने लगता है।
फलतः आदि जनभाषा का प्रवाह और साहित्यिक
भाषा की प्राकृतिक-अपभ्रंश रूप विकास-धारा
आदि घूम-घामकर एक साथ मिल जाते है।
यही कारण है कि भाषा का विश्लेषण
करते समय मनीषी भी ठिठक जाते
है, द्वैविध्य में पड़ जाते हैं।
ऐतरेय ब्राह्मण के पुलिन्दो
(विश्वामित्र के पुत्रो) की
भाषा में ही वैदिक
'पल्पूलयति' का
वास्तविक अर्थ
मिल सकता
है।

बुन्देलखण्डी भाषा में व्यवहृत
'मौंड़ा' शब्द के विकास का इतिहास

विकासात्मक इतिहास-ज्ञान के बिना किसी शब्द की व्युत्पत्ति करना अपना दुःसाहस प्रदर्शनमात्र होता है। प्रस्तुत शब्द के इतिहासान्वेषण के अभाव मे कल्पनाशील विद्वान् इसकी व्युत्पत्ति—मूलः > मोला > मोड़ा > मौड़ा तथा मूढः > मूड (:) (काश्मीरी भाषा) > मुड (:) (काश्मीरी भाषा) > मोडा > मौड़ा—करने का भ्रान्त प्रयत्न कर लेते है। वस्तुतः कोई भी शब्द अपने मे लम्बा इतिहास उपगूहित रखता है।

उपनिषद्, सूत्र तथा लौकिक संस्कृत वाङ्मय में एक शब्द उपलब्ध होता है—माणव (क)। समान पद मे रकार या षकार से परवर्ती नकार को णकार करने का विधान है—'रषाभ्या नो णः समानपदे' (८।४।१)। प्रस्तुत नियम के अनुसार 'मानव' शब्द में नकार को णकार करने का कोई निमित्त उपात्त नही है। प्राकृत भाषाओं मे अनैमित्तिक णकार का बाहुल्य है। प्राकृत जन अपनी भाषा में णकार का अप्रयोजनीय यथेष्ट प्रयोग कर डालते है। यह प्रयोग मुख-सुखार्थता के अतिरिक्त कोई महत्त्व नही रखता। पंजाबी तथा राजस्थानी भाषा में णकार-प्राचुर्य मननीय है।

इस (कुत्सित) निरर्थक प्रवृत्ति को देखकर संस्कृत में कुत्सित अर्थ बोधित कराने के हेतु बहुतर अनैमित्तिक णकार का प्रयोग कर दिया जाता है। 'मानव' का अर्थ होता है—मनुष्य। नकार को अनैमित्तिक णकार[1] कर देने पर मानव का अर्थ हुआ—कुत्सित मनुष्य। जो मनुष्यों जैसा व्यवहार करे पर पूर्ण मनुष्य न हुआ हो उसे भी माणव पद से संबोधित किया जाएगा। यद्यपि पाणिनीय सूत्रो द्वारा माणव-गत णकार का विधान नही किया गया तथापि उनके सूत्रो मे यह अनेकत्र उल्लिखित हुआ है—'माणवचरकाभ्यां खञ्' (५।१।११)—माणवीन=माणव संबन्धी, माणव का हितकारी, 'ब्राह्मणमाणव-

---

१. द्रष्टव्य हमारा लेख—'ण' की सत्ता और समाधान—त्रिपथगा, दिसम्बर १९६१; तथा 'ण' एक समस्या और समाधान—'साप्ताहिक आज', ६ जनवरी १९६२.

पशुओ का सयोग कराना उचित नही है। यह पशु सर्वांगी है, इसलिए इनकी वशोन्नति का कार्य बुद्धियुक्त चुनाव और छटाव की प्रणाली से ही करना उचित है।

अनुसार माणव (=ब्राह्मणकुमार) पाणिनि के साथ महापद्मनन्द की मित्रता रही थी। अतः प्रतीत होता है कि पालि के समय से इस मानव >माणव [=कुत्सित मनुष्य] का प्रयोग कुमार अर्थ में होने लगा था। इसका अनैमित्तिक णकार भी इसके प्राकृत तथा पालि होने का सूचक है, मूल संस्कृत का नही।

संस्कृत वाङ्मय में माणव (क) शब्द अधोलिखित ग्रन्थो मे पाया जाता है—माणवकः-इतिहासोपनिषद् १०:७; गोभिल-गृह्यसूत्र[1] २,१०,६; 'सिद्ध-व्यञ्जना माणवा माणवविद्याभिः प्रलोभयेयुः'-कौ० अर्थशास्त्र (४।५)। कौ० अर्थ-शास्त्र को छोड़कर दोनो ग्रन्थो में प्रकृत शब्द का अर्थ बालक होता है। अर्थशास्त्र में माणव शब्द कुपुरुष=चौर, पारदारिक आदि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। वहाँ **माणवविद्या** प्रस्वापन तथा अन्तर्धानादिकारी कुमन्त्र अर्थो की वाचिका है। श्रीमद्भागवत मे माणवक शब्द षोडश वर्ष पर्यन्त (प्रथम वयस्क) अर्थ मे प्रयुक्त मिलता है। [अल्पो मानवः—माणवकः (अल्पे ५।३।८५) कन्]

एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम्।
दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ॥८।१६।३२।

अमरकोश २।६।१०६ (भरत) टीका के अनुसार विंशतियष्टिक हार का भी नाम माणवक होता है। वह माणवक = शिशु के सदृश होने के कारण माणवक कहलाया। बृहत्संहिता मे षोडशयष्टिक हार का माणवक नाम से उल्लेख हुआ है—८१।३३। इन समस्त सस्कृत ग्रन्थो पर प्राथमिक जनभाषा (प्राकृत) का प्रभाव सुस्पष्ट है।

लोक मे उक्त शब्द का व्यवहार अविच्छिन्नरूपेण चला आया। सूरदास और रसखान ने इसका प्रयोग किया है—

मैया बहुत बुरो बलदाऊ।
कहन लगे वन बडो तमासो सब मौंड़ा मिलि आऊ। (सूरदास)।

---

१. 'यदहरुपैष्यन् माणवको भवति'—२ १०।७=माणवकः=इत्यनधीतवेदो भण्यते 'अनूचो माणवको ज्ञेयः' इति। ४१३ पृष्ठ। टीकाकार चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार।

"माणवकोऽनुपयुक्तो भवति। माणवक इत्यनधीतवेदस्येयं संज्ञा। तथा चोक्तम्—'अनूचो माणवको ज्ञेयः'—कर्मप्रदीप ३।८।११"—भट्टनारायण भाष्य २।१०।६, ४५६ पृष्ठ।

होती है, ले जाया जाता है। यहा के पशुओ का अस्थिपजर और डील-डौल खासा विकसित, मजबूत और गठीला होता है।

राजस्थान मे पश्चिम-उत्तर के इलाके जैसलमेर से सिन्ध तक थारपारकर, उत्तरी इलाके मे जैसलमेर से बीकानेर तक और पजाब से लगे हुए उत्तरी भाग तक राठी, पूर्वी भाग मे अलवर के आसपास के इलाके मे रथ तथा भरतपुर के पास के इलाके मे मेवाती और मध्य राजस्थान मे जोधपुर के आसपास के इलाके मे नागौर जाति के पशु मिलते हैं।

इस इलाके के सभी पशु अपनी स्थानिक स्थितियो के अनुसार उत्तम श्रेणी के पशु होते है। थारपारकर और राठी दूध देने मे बढे हुए है। रथ और मेवाती जाति की गाये दूध भी अच्छा देती हैं और इनके बैल भी अच्छे होते है। नागौरी पशु दूध तो साधारण देते है परन्तु उनके बैलो की गिनती भारत के प्रसिद्ध बैलो मे की जाती है।

यहा पशु-प्रजनन का कार्य स्थानिक आवश्यकताओ को पूरा करने की दृष्टि से बराबर एक ही विधि से हुआ है। इस कार्य मे काफी हद तक सफलता प्राप्त हुई है और इसके फलस्वरूप काफी अच्छे पशु मिलते है।

इस इलाके मे जनसख्या कम है खेती भी कम होती है, इसलिए पशु-पालन यहा के निवासियो का एक मुख्य धन्धा होगया है और उनका रहन-सहन बहुत-कुछ उनपर निर्भर करता है। यहा पश्चिमी और उत्तरी राजस्थान मे खानाबदोश लोगो के ऐसे गिरोह है जिनका पेशा पशु-पालन ही है। वे अपने पशुओ के साथ केवल राजस्थान मे ही नही, अपितु राजस्थान के बाहर भारत के अन्य प्रदेशो मे भी, जहा अच्छी घास और चारा मिलता है, अपने पशुओ को चराते हुए घूमते रहते है। ये पशु-पालन की कला मे निपुण होते हैं और अपने पशुओ को भली प्रकार पालते है।

राजस्थान मे भी धीरे-धीरे जनसख्या बढ रही है। यहा के निवासियो के सामने समुचित खुराक उपलब्ध करने की समस्या उपस्थित हो

बुन्देलखण्डी भाषा में व्यवहृत

कोथमीर शब्द के विकास का इतिहास

'हरा धनियाँ' इन दो शब्दो द्वारा हिन्दी मे जिस अर्थ का प्रतिपादन किया जाता है बुन्देलखण्डी बोली मे उसे 'कोथमीर' कहा जाता है। वहाँ धनाँ या धनियाँ से सूखे अथवा हरे बीज का बोध होता है पत्ती का नही। उदाहरणतः निर्धनता व्यक्त करने के हेतु वहाँ की कहावत 'न दो धना और न दो चना' में धना का बीज रूप अर्थ मननीय है। हिन्दीशब्दसागर मे प्रस्तुत शब्द की व्युत्पत्ति के कोष्ठक के आगे प्रश्नवाचक चिह्न लगा है।

वैदिक भाषा मे इस शब्द का मूल अनुपलब्ध है। मेदिनीकोश[1] के अनुसार 'तुम्बुरी' धनियाँ को कहते है। 'कुस्तुम्बरी'[2] शब्द सुश्रुत मे उपलब्ध होता है।[3] पाणिनीय अष्टाध्यायी तथा वैद्यक-रत्नमाला[4] मे तो 'कुस्तुम्बुरु' शब्द भी प्राप्त होता है। अमरकोश मे केवल कुस्तुम्बुरु शब्द का उल्लेख मिलता है कुस्तुम्बरी का नही। वह पाणिनि (६।१।१४३) तथा ऋक्तन्त्र (४।६।५) से अनुक्त है।

वस्तुतः कुस्तुम्बरी शब्द का प्रयोग अनेकत्र उपलब्ध होता है। 'कुस्तुम्बुरु' शब्द देशभेद से भले ही कही प्रयुक्त होता रहा हो संप्रति प्रयोग दुर्लभ है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार[5] – 'धनिये के लिए संस्कृत का यह विचित्र शब्द दक्षिण-भारत की भाषाओ से लिया गया था।' उन्होने उदाहरणस्वरूप कन्नड़ का 'कोतम्बरि', तेलुगू का 'कोत्तिमिर' और तमिल का 'कोत्तमल्लि' प्रस्तुत

---

१. 'तुम्बुरी कुक्कुरस्त्रियाम्। धन्याकेऽपि'—२७।१६३

२. कु = कुत्सिता तुम्बरी—"पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्" (पा० सू० ६।३।१०९) सूत्र से सुट् (स्) प्रत्यय होता है।

३. आर्द्रा कुस्तुम्बरी कुर्यात् स्वादुसौगन्ध्यहृद्यताम्।
सा शुष्का मधुरा पाके स्निग्धा तृड्दाहनाशिनी॥
सूत्रस्थान, ४६ अध्याय।

४. धन्याकं धान्याकं धान्यं कुस्तुम्बुरु धनीयकम्।
धन्या कुस्तुम्बरी चान्या वेषलोग्रा वितुन्नकम्॥

५. पाणिनिकालीन भारतवर्ष।

थारपारकर नसल की गाय
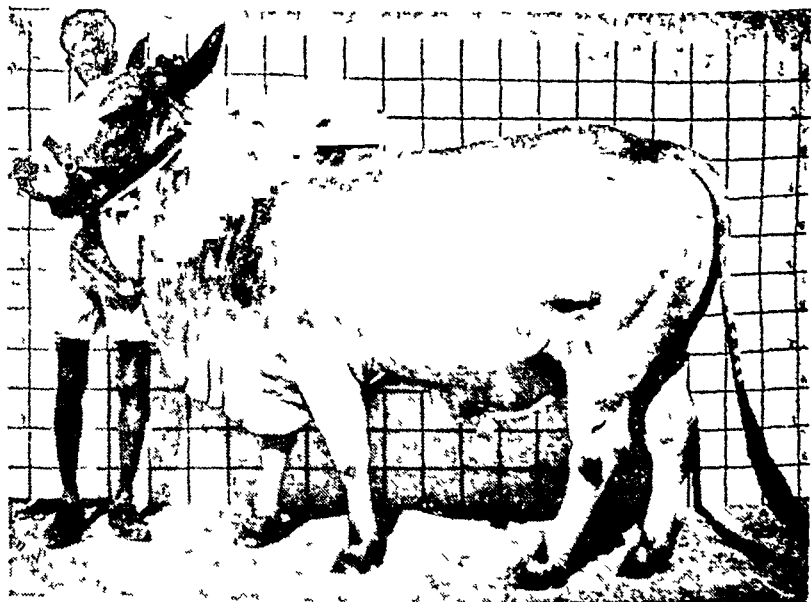
थारपारकर नसल का सांड

दूसरी ओर 'बलीवर्द' के बली>बैल और वर्दः>बद्द (धौलपूर), वरदा के समान अलग-अलग तो नही पर 'कुस्तुम्बुरी' के सुट्-विशिष्ट 'कुस्' के योग के बिना 'तुम्बुरी' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। इसके व्यवहार-क्षेत्र प्राय: सीमावर्ती प्रदेश जाने जाते है। नेपाल, कुमायूँ, कश्मीर तथा पंजाब मे इसका व्यवहार होता है। पालि मे तिम्बुरु,[१] तिम्बरुक्ख और तिम्बरूसक[२] शब्दो का प्रयोग 'तिन्दुकफल' अर्थ मे मिलता है। प्राकृतभाषा मे तेंदू के पेड़ के लिए चार शब्द व्यवहृत हुए है—तुंबुरु (दे ४।३), टिंबरु, टिंबरुअ (दे ४।३; उपदेशपद १०३१ टी०) और तिम्बरुणी[३]। नेपाल देश मे तिमुर् नामक झाड़ियाँ होती है[४]। इसकी छाल तथा बीज अजीर्ण (मन्दाग्नि), ज्वर एवं विषूचिका मे सुगन्धित और बलकारक औषध (Tonic) के रूप मे उपयुक्त होते है और मसालो के रूप मे व्यवहृत होते है। इनकी छोटी-छोटी टहनियाँ दातून के रूप मे प्रयुक्त होती है। दन्त-पीड़ा और विकृत जुकाम को ठीक करने के लिए भी इनका भंग के साथ उपयोग किया जाता है।

कुमायूँ में इसे 'तिम्बूर' के नाम से जाना जाता है। पंजाबी भाषा मे यह तिम्बर और तीम्ब्रू (<तुम्बरी) के नाम से प्रसिद्ध है[५]। काश्मीरी भाषा मे इसे तीबर तथा तीब्रू कहते है[६]। गर्म मसाले के रूप मे प्रयुक्त होने वाले इनके (कालीमिर्च बराबर) बीज को हिन्दी मे 'तुंबर्'[७] (<तुम्बुरु) कहते है।

---

१. जातक ६।२३६, =वृक्षविशेष। सुत्तनिपात ११० जातक ६।४५७ (सुत्तनिपात A १७२ : तरुणदारिका)

२. विनय ३।५६; विमानवत्थु ३३[२७] (= तिन्दुकफल—विमानवत्थु A १४७; तिपुससदिसा एका वल्लिजाति तिम्बरूसकन् ति च वदन्ति); धम्मपद A ३।३१५.

—P. T. S. Pali Dictionary

3. Gramatik Der Prakrit Sprachen. 218.

4 Ralph Liliey Turner : Comparative And Etymological Dictionary Of The Nepali Language.

5. Punjabi Dictionary.

6. G. A. Griersen : Dictionary Of The Kashmiri Language.

७. 'तुबुरी = धनियाँ। तुंबर * तथा तुबुरु = १—धनियाँ, २—एक प्रकार के पौधे का बीज जो धनियाँ के आकार का पर कुछ-कुछ फटा हुआ होता है। इसमे बड़ी झाल होती है। मुँह में रखने से एक प्रकार की चुनचुनाहट होती है और लार गिरती है। दाँत के दर्द में इस बीज को लोग

देनेवाली होती है और बैल भी खासे अच्छे होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस वश की उत्पत्ति के प्रारम्भ मे उत्तर-भारत के सफेद और भूरे पशुओं तथा गिर जाति के एव सिंधी नसल के पशुओ का परस्पर सयोग हुआ हो। इन पशुओ को सफेद सिन्धी भी कहते है, क्योकि ये सिवाय रग के सभी वातो मे सिन्धी पशुओ से काफी मिलते है। उनको एक नसल के पशु कहा जा सकता है क्योकि ये अपने जैसी सन्तान वरावर उत्पन्न करते है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये उत्तरी भारत के पशुओ के प्रतिरूप होते हैं। ये डीलडौल मे मझले कद के, छोटे पैरोवाले और लम्वे शरीर के होते हे। गाय का वजन ७००-७५० पौड, वैल का ७५०-८०० पौड और साड का ८००-८५० पौंड तक होता है। खाल और रोआ वीच के दर्जे के होते हैं। ये सफेद और भूरे रग के होते है। खाल जरा ढीली होती है। कमर सीधी, पेट खासा विकसित और छाती विकसित परन्तु वहुत चौडी नही होती। सिर चौडा और एक-सा होता है। माथा, आखो व सिर के बीच मे काफी चौडा और कुछ उभरा हुआ तथा मुह की ओर भिडा होता जाता है। सीग लम्वाई मे मध्यम श्रेणी के और हरियाना जाति के पशुओ की तरह ऊपर को जाकर अर्द्ध-धनुषाकार होते है। ये सिरे पर विशेष नोकीले नही होते। चेहरा मझले माप का परन्तु चौडा, भरा हुआ और लम्वा होता है। आख खासी वडी होती है। आखो के चारो तरफ कुछ कालिमा होती है। नाक वीच के दर्जे की, कान वडे और कुछ मुडे हुए और लटकवा होते है। गर्दन वीच की जाति की, छोटी और मजबूत होती है। गलकम्वल बीच की जाति का लटकवा होता है। थुई मध्य जाति की, कूल्हे अच्छे विकसित और चौडे होते है। ऐन बीच की जाति के बडे और फैले हुए होते है। थन विशेप वडे नही होते, परन्तु खासे विकसित और अलग-अलग होते है। पूछ विशेष लम्वी न होकर काली गुच्छेदार होती है। मूतना मध्यम दर्जे का होता है।

बुन्देलखण्डी भाषा में व्यवहृत

टोंका शब्द के विकास का इतिहास

भारतीय आर्यभाषाओ के ऐतिहासिक विकास-क्रम के परीक्षण मे निम्न-लिखित वाङ्मय-सामग्री अपेक्षणीय होती है—

१—वैदिक साहित्य, २—वाल्मीकीय रामायण, ३—महाभारत, ४—काव्य नाटक आदि साहित्य, ५—पालि, ६—प्राकृत, ७—शिलालेख, ८—अपभ्रंश, पैशाची आदि, ९—प्रादेशिक भाषाएँ और हिन्दी।

कुछ शब्दो का विकास वैदिक भाषा से सीधे प्रादेशिक भाषाओ मे दृष्टि-गोचर होता है। मध्य-काल की (वाल्मीकीय आदि संस्कृत तथा पालि-प्राकृत आदि) विकास-शृङ्खला सर्वथा विच्छिन्न, विलुप्त रहती है। यह अक्रमिक विकास-कार्य मण्डूक-प्लुति न्याय द्वारा ज्ञातव्य है। स्थलचर पशुओ की गति का ज्ञान उनके क्रमिक पद-विन्यास द्वारा सुशक्य है। मेढक की गति का ज्ञान उस प्रकार संभव नही है क्योकि वह क्रमशः पद-विन्यास नही करता प्रत्युत उछाल लगाकर मध्य-भाग छोड़ता चला जाता है। उसकी गति का प्रभाव बीच के स्थान को अछूता रखता है। यही बात कभी-कभी भाषा-विकास मे घटित होती है।

धूलि तथा कन्या अर्थ वाला गर्दा शब्द तैत्तिरीय संहिता (३।१।११।८) मे उपलब्ध होता है। वेद से परवर्ती संस्कृत, पालि एवं प्राकृत साहित्य मे यह कही भी प्रयुक्त नही हुआ है। हिन्दी मे ठीक उसी रूप मे सुरक्षित इसका प्रयोग दर्शनीय है। संभवतः यह संस्कृत से फारसी—'गर्द' तथा फारसी से होता हुआ हिन्दी मे आया हो। विकृत न हो पाने के कारण इसके शाखा-विकास को समझना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसी प्रकार टोका (<तोकम्) शब्द ऋग्वेद आदि मे तो प्रयुक्त हुआ है पर संस्कृतोत्तर मध्य काल मे इसका विकास तथा प्रयोग सर्वथा विलुप्त है। पालि, प्राकृत एव अपभ्रश आदि मे यह कही भी प्रयुक्त नही हुआ केवल बुन्देलखण्डी भाषा को छोड़कर। वैदिक तथा लौकिक संस्कृत से इसका सीधे बुन्देलखण्डी भाषा मे कूद जाना मेढक-उछाल को द्योतित करता है। टोका शब्द यद्यपि सस्कृत से सीधा विकसित होकर बुन्देलखण्डी मे आया है तथापि यह गर्दा शब्द के समान विकृति-शून्य नही है। इस पर शौरसेनी प्राकृत की छाप है।

बुन्देली के शिशुवाचक टोका शब्द के विपरीत एक अन्य टोका शब्द हिन्दी मे प्रचलित है। उसके अर्थ होते है—(१) छोर, सिरा, किनारा; (२) कोना,

राठी नसल की गाय
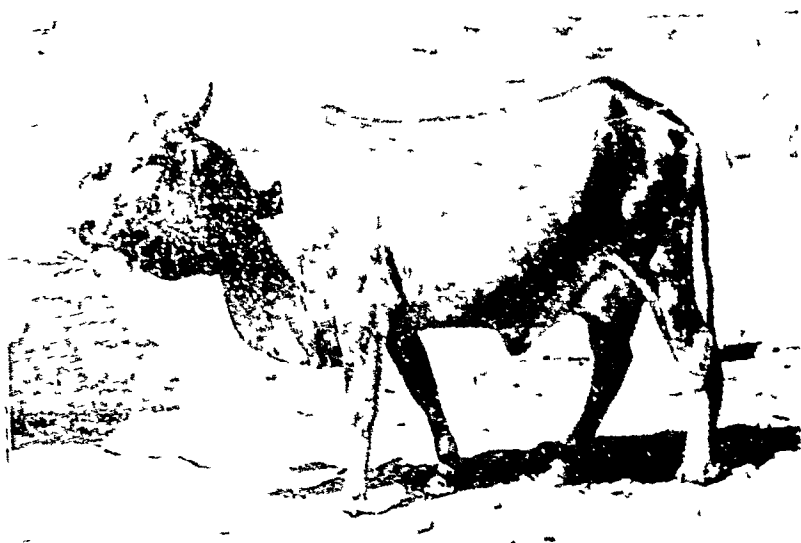
राठी नसल की गाय

बुन्देलखण्डी भाषा में व्यवहृत
'दलाँकबौ' क्रिया के विकास का इतिहास

किसी भी भाषा के अध्ययन हेतु प्रामाणिक प्रयोग-सामग्री नितराम् अपेक्षणीय होती है। प्रयोग-साक्ष्य के अभाव मे निकाला गया निष्कर्ष भ्रान्त भी हो सकता है और घुणाक्षरन्यायेन यथार्थ भी।

भाषाविकास के शृङ्खलाबद्ध अध्ययन का सुचारुरूपेण किया जाना तभी संभव है जब हमे सबद्ध भाषाओ के क्रमिक प्रयोग उपलब्ध हो। इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण अध्ययन न हो पाने का प्रमुख कारण उनकी अनुपलब्धि है। आज अनेक वैदिक ग्रन्थ उपलब्ध नही है। शिल्पशास्त्र की प्रभूत पुस्तके नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी है। आक्रमण-कारियो के विध्वसात्मक असंख्य आक्रमणो ने पुस्तकालयो को भस्मसात् कर डाला। ऐसी स्थिति मे शब्दो के इतिहास पर प्रामाणिक रूप से लिखना अत्यन्त दुःसाध्य कार्य है।

प्रयोग-सामग्री के अभाव मे लोकप्रमाण शीर्षण्य माना जाता है। महाभाष्य-कार ने इसे लोकविज्ञान नाम दिया है। उससे भी पहले श्रीकृष्ण ने इसे लोक-सग्रह के नाम से संबोधित किया था[1]।

लौकिक संस्कृत मे ऐसे अनेक क्रिया-रूप उपलब्ध नही होते जिनकी चर्चा सस्कृत धातुपाठो मे की गयी है। लोक मे अत्यधिक मान्यताप्राप्त पाणिनीय धातुपाठ मे हजारो ऐसे धातु है जिनके प्रयोग लौकिक या वेदिक किसी भी सस्कृत मे नही मिलते। प्रयोगो के ही आधार पर किसी व्याकरण की रचना की जाती है। प्रयोग न रहने पर धातुओ का कल्पना के आधार पर बना लिया जाना सभव नही। मौलिकता प्रदर्शन के अहं से कोसो दूर समन्वयवादी पाणिनि द्वारा यह सर्वथा अकल्पनीय था। तब प्रश्न उठता है—फिर ये अप्राप्त-प्रयोग धातु संस्कृत वाङ्मय मे कहाँ से आ टपके ?

उत्तर मे निवेदन है—पाणिनि जैसे प्रामाणिक मुनि द्वारा उपदिष्ट धातुपाठ-गत धातुओ को देखकर उनके प्रयोगो की पूर्वसत्ता का निश्चय होता है। या तो आज

---

१. 'लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि'—गीता ३।२०

बीकानेर, बाडमेर और जालौर जिलो मे मिलते हैं।

वशोत्पत्ति का इतिहास—यह इलाका वीरान और सूखा है। यहा वर्ष मे औसतन ६ इच वर्षा होती है। यहा की भूमि रेतीली है और रेत के टीले या टीवे बहुतायत से पाये जाते है। यहा खेती बहुत कम होती है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमनेवाले लोग (खानाबदोश) पशु-पालन करते है और अपने पशुओ को प्राय चराई पर ही रखते है। जब एक जगह घास खत्म हो जाती है तब ये दूसरे स्थान को चले जाते है। ये लोग पशु-पालन की कला मे निपुण होते हैं और पशु-प्रजनन के हुनर को भी खूब समझते है। क्योकि इनकी जीविका केवल पशु-पालन पर ही निर्भर करती है, इसलिए इन्होने राठी जाति के पशुओ मे दूध देने के गुण को विशेष रूप से प्रवेश करने का प्रयत्न किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि साहीवाल नसल के पशुओ से जैसलमेर के दक्षिण-पश्चिम के थारपारकर और सिंधी जाति के पशुओ का सयोग कराकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए राठी जाति के पशु उत्पन्न किये है। इसमे इन्हे पूरी सफलता मिली है। ये पशु दूध देने मे भी अच्छे होते है और यद्यपि इनके बैल तेज और फुर्तीले नही होते, फिर भी उस इलाके मे काम करने योग्य होते है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये अच्छे विकसित और मझले कद के, लम्बे शरीरवाले पशु होते है। गाय का वजन लगभग ८०० पौड, बैल का ८५०-९०० पौड तथा साड का ९००-९५० पौड तक होता है। खाल बीच की जाति की और रोआ छोटा होता है। इनका रग आमतौर से गहरा गेरुआ, सफेद, हल्का लाल और गहरा भूरा तथा काले रग के चकत्ते और दाग लिये हुए चितकबरा होता है। कमर सीधी और चौडी तथा पेट खूब विकसित, दोनो तरफ फैला हुआ और गहरा होता है। छाती खासी चौडी और विकसित होती है। सिर कम उठा हुआ बीच के दर्जे का होता है। माथा चौडा होता है। सीग नीचे से भारी, ऊपर से पतले, गोलाकार और साहीवाल जाति के पशुओ

ह्विट्नी द्वारा प्रत्यादिष्ट अनेक धातुओ के प्रयोगो को भी निदर्शन-स्वरूप उपस्थापित किया[1]।

भावल्युडन्त द्राङ्क्षणम् का विकास 'दलाँकना' के रूप मे इस प्रकार हुआ—द्राङ्क्षणम्>(स्वरभक्ति) दराङ्क्षणम्>(ङ्>अनुस्वार) दराँक्षना>(क्ष>ख, र>ल) दलाँखना>(ख>क) दलाँकना। खड़ी बोली के 'दाँकना' शब्द का विकास 'दलाँकना' के 'ल्' का लोप होने पर ज्ञेय है।

इसी क्रिया का एक अन्य रूप भी प्रचलित है—'डकराना'। विद्वज्जन इसे अनुकरणात्मक (Onomatopoetic) कहकर संतोष कर लेते है। हिन्दी-शब्द-सागर मे इसे अनुकरणात्मक बताया गया है। वस्तुतः तथ्य ऐसा नही है। यद्यपि इसका विकास दराँक्षना>दराँकना के 'रा' तथा 'क' वर्णो का विपर्यय एव 'द' को मूर्धन्य 'ड' करके बतलाया जा सकता है तथापि प्रामाणिकता के अभाव मे यह बुद्धिकौशल ही समझा जाएगा।

इस संबन्ध मे पाणिनीय धातुपाठ का एक धातु उल्लेखनीय है—√कर्द् (कर्द) १।५७ कुत्सिते शब्दे=खराब शब्द करना। सायण ने कुत्सित शब्द का अर्थ किया है--कौक्षे=कूँख=पेट का शब्द (डकारना)। संपूर्ण संस्कृत वाङ्मय मे इस धातु का क्रियारूप कही भी नही मिलता। कात्यायन-श्रौत-सूत्र २५।८ तथा महाभारत[2] १४।२६८३ मे कर्दम शब्द का उल्लेख अवश्य हुआ है। वैयाकरण इस शब्द को√कर्द धातु से सिद्ध करते है (उणादि ४।८४;) पर हमे इस धातु के 'कुत्सित शब्द=डकारना' अर्थ तथा कीचड़ मे कोई सागत्य नही दिखता। हाँ,√चुम्ब् (चुबि) १।४२३ वक्त्रसंयोगे (प) धातु के 'प्रासाद आकाश को चूमते थे' प्रयोग के समान 'कौक्ष शब्द' अर्थ को कुत्सित अर्थ मात्र मे लेकर 'कर्दम' का 'पिच पिच' रूप अर्थ माना जा सकता है।

हेमचन्द्र ने[3]√कर्द् धातु के भावल्युडन्त 'कर्दनम्' का उल्लेख 'उदर शब्द' अर्थ बतलाते हुए किया है। यह 'कर्दनम्' 'क' तथा 'द' के विपर्यय होने पर 'दर्कणम्' हो जाएगा। इसका द्विधा विकास यो ज्ञेय है—(क)—दर्कणम्>डक्कनम् (संयोगे गुरुः)>डाकना ('न' के प्रभाव के कारण नही किन्तु द्वितीय

1. W. Z. K. M. VIII Band 1894, P. 17–42.

2. Otto Bohtlingk, Rudolf Roth : Sanskrit wörterbuch

३. 'पर्दनं गुदजे शब्दे कर्दनं कुक्षिसंभवे'—अभिधानचिन्तामणि, श्लोक-सख्या १४०३.

तौर से पाई जाती है, परन्तु ६ प्रतिशत चिकनाईवाला दूध देनेवाली गाये भी देखने मे आती हैं। यहा दूध की बिक्री कम है, इसलिए यहा पर प्राय दूध मे से घी निकाला और बेचा जाता है। बैल देखने मे मजबूत, पर ढीले डील-डौल के होते हैं और काम करने मे सुस्त तथा धीमी गति से चलनेवाले होते है।

उन्नति के उपाय—इनकी उन्नति भी इसी जाति के पशुओ के समुचित चुनाव और छटाव द्वारा होनी चाहिए। इस इलाके के कुछ हिस्से मे नहर से सिचाई आरम्भ होगई है और सिचाई के साधनो को शीघ्र ही इस इलाके मे बढाने का प्रयत्न हो रहा है। कुछ अर्से से गगानहर और बीकानेर के पास खूब खेती होने लगी है। आशा है, शीघ्र ही इस इलाके के अन्य हिस्सो मे भी इसी भाति खेती होने लगेगी। इसलिए तगडे और जल्दी काम करनेवाले बैलो की अधिकाधिक माग हो जायगी। अत यह आवश्यक प्रतीत होता है कि राठी जाति के बैल सबसे मजबूत और अधिक काम करनेवाले तथा फुर्तीले हो, पर गायो का दूध यथासम्भव कम न हो। इस दृष्टि से इनमे इन गुणो का समावेश होना चाहिए। इसके लिए दो ही सुझाव हो सकते है। प्रथम तो थारपारकार जाति के पशुओ से इनका सयोग कराया जाय, ताकि दूध पर बिना खराब असर पडे बैल अबसे अच्छे हो। दूसरे हरियाना या रथ जाति के पशुओ से इनका सयोग कराया जाय। दूसरे सुझाव मे अच्छे बैलो की उन्नति पहले सुझाव की अपेक्षा शीघ्र और अधिक होने की गुजाइश है। दूध तो दोनो सुझावो मे कायम रखा जा सकता है। हरियाना और रथ के इलाके मे भी सिचाई के साधन है, राठी के इलाके मे वे साधन होनेवाले है। इसलिए दोनो मे से दूसरे सुझाव मे अपेक्षाकृत अधिक समानता होगी।

३ नागौर

रहने का स्थान—ये पशु जोधपुर और इसके आसपास के पूर्वी इलाके मे पाये जाते है। नागौर इनका केन्द्र है, इसलिए ये नागौरी

प्राकृत भाषा मे एक शब्द विद्यमान है—पडिऊल[1] (<प्रतिकूल)। यद्यपि वैदिक√पल्यूल धातु का संबन्ध उक्त शब्द से जोड़ा जा सकता है—पडिऊल > पलिऊल > पल्यूल, तथापि 'पवन'=पवित्रता अर्थ का बोध इससे दुष्कर है। दुर्गोक्त√पल्यूल धातु मे पवित्रता अर्थ नही है। वहाँ 'लवन' और 'पतन' दोनो मे ही प्रतिकूलतारूपेण इसका सागत्य हो जाता है। कुछ विद्वान्√पल (काशकृत्स्न) और संघातार्थक√पूल अथवा पालन-पूरणार्थक√पॄ धातुओ के योग से उक्त धातु की संगति लगाते है।

हमारे मतानुसार 'पल्पूल' शब्द 'प्रप्लुत' के अर्थ का अभिधायक है। तैत्तिरीय ब्राह्मण[2] मे √प्लु (प्लुङ्) धातु के प्रयोग के अनन्तर उसी अर्थ मे√पल्पूल को पढ़ा गया है। वहाँ सायण ने भी 'पल्पूलयति' का अर्थ 'प्लावयति' किया है। यह 'प्लावन', शोधन की पूर्वक्रिया है। 'प्लावन' का अर्थ होता है—'जलार्द्र करना', और जलार्द्र=स्नात वस्तु शुद्ध हो जाती है। अतः तैत्तिरीय संहिता मे सायण ने 'पल्पूलन' का अर्थ किया है—'वस्त्रशुद्धिसाधन' और 'पल्पूलयेयुः' का (अर्थ किया है) 'शोधयेयुः'=शोधन[3]।

प्राकृत भाषा में 'पप्पुअ' (≮प्रप्लुत) का अर्थ होता है—जलार्द्र, पानी से भीगा हुआ। प्रप्लुत > पल्पूल > पप्पूल (> पप्पूअ > पप्पुअ—प्राकृत भाषा) विकास मननीय है। केवल तैत्तिरीय ब्राह्मण मे 'पल्यूलयति' यकारघटित प्रयोग मिलता है किन्तु वह 'पल्पूलयति' का पाठभेद मात्र प्रतीत होता है। हस्तलेखो मे पकार का यकाररूपेण समझा जाना स्वाभाविक है।

---

१ अच्चुअसअअं ८०, सेतुबन्ध ३।३५।

२. 'तदनुवेनन्ववप्लवते, यदप्सु पल्पूलयति। बहु वा अश्वोऽमेध्यमुपगच्छति। मेध्यानेवैनान् करोति'—तैब्रा० १ काण्ड, ३ प्रपाठक, ५ अनुवाक, २ मन्त्र।

— 'पल्पूलयति=जले प्लावयति। प्रक्षालयतीत्यर्थः'—सायणभाष्य।

३. 'नास्य पल्पूलनेन वासः पल्पूलयेयुः' तैसं० २ काण्ड, ५ प्रपाठक, ५ अनुवाक, ६ मन्त्र।

—'पल्पूलनम्=वस्त्रशुद्धिसाधनम् ऊषादि (=क्षारमृत्तिकादि) तेनास्य वस्त्रं न शोधयेयुः'—सायणभाष्य। 'पल्पूलयतिः=स्नानकर्मा'—भट्टभास्करभाष्य (मैसूरसस्करण, १८२१ पृष्ठ)।

और खूब सटा हुआ होता है। इन पशुओ के शरीर की विशेषता यह है कि वे प्राय आगे से भारी और पीछे से शरीर मे हल्के होते हैं।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा तापक्रम ३३° से ११८° और वर्षा करीब १२ इच प्रतिवर्ष होती है। ये पशु जोधपुर स्टेट के इलाके मे पाये जाते हैं। यह इलाका सूखा है परन्तु यहा वाछित खनिज पदार्थों की कमी नही है। इसलिए इनका शरीर काफी विकसित, गठीला और मजबूत हड्डीवाला होता है।

गाय और बैल के गुण—गाय दूध कम देती है। साधारण गाय प्राय ३-४ सेर दूध देती है, परन्तु बहुत अच्छी गाय ६-७ सेर दूध देने वाली भी होती है। पहले यह लगभग ५ वर्ष मे व्याती है, बाद मे हर डेढ से दो वर्ष तक व्याती रहती है। बैल अपनी तेज चाल के लिए प्रसिद्ध हैं। ये हल्के, बडे मजबूत और सुन्दर होते है, परन्तु पहाडी और चिकनी मिट्टी के इलाके मे रो देते है। भारतवर्ष के उत्तरी भाग के दूर-दूर के लोग इस जाति के जानवरो को परबतसर के मेले पर खरीदने आते हैं।

उन्नति के उपाय—इस इलाके की आधुनिक स्थिति पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि नागौर नसल के जानवर वहा की गाय-बैल सम्बन्धी जरूरतो को भली प्रकार पूरी कर रहे हैं। इनकी उन्नति समुचित चुनाव और छटाव की प्रणाली से ही करनी चाहिए। जहा तक हो, इनमे बाहर के खून का प्रवेश न होने देना चाहिए। इस जाति के पशुओ मे शीघ्र दूध बढाने के लिए हरियाना या काकरेज जाति के पशुओ का सयोग कराया जा सकता है। सयोग कराने मे इतना खतरा अवश्य है कि हरियाना जाति के पशु इनके मुकाबले मे अधिक वजन के और सुस्त होते है तथा काकरेज जाति के पशु इनसे काफी भारी होते हैं और दोनो ही जाति के पशु इनसे अधिक खाते है।

कंकड़ प्रभृति को पृथक् कर देना **'लवन'** का अर्थ हुआ। यही 'लवन' अर्थ अनाज से कूड़ा के दूर फेके जाने पर, पवन = वायु या पावित्र्य अर्थ मे परिवर्तित हो जाता है। यद्यपि लवन (= अनाज ?) का पतन (= सूप मे पटकना) या पवन = स्वच्छता अर्थ भी किया जा सकता है तथापि षष्ठी समास करने पर 'लवनपतनयोः' का द्विवचन संगत न हो सकेगा।

संक्षेपतः 'परोरबौ' क्रिया का विकास इस प्रकार बोधनीय है—पल्पूल (या पल्यूल) > [द्वितीय पकार अथवा यकार का लोप] पलूल > पलोल √परोर (बौ)। बाँहो को (लवन का लाक्षणिक अर्थ) ऐंठने और उनके भराव या पुष्टता को देखने के अर्थ मे **'पपोरना'** प्रादेशिक क्रिया मिलती है[1]। हिन्दीशब्द-सागर मे इसे देशी लिखा गया है। मेरे मतानुसार इसका विकास इस प्रकार हुआ है —'पल्पूलन > पप्पूलन (हेमचन्द्र) > पपोलन > **पपोरना**।

वस्तुतः √पल्पूल मे अनुस्यूत √प्लु (प्लुङ्) धातु का अर्थ होता है 'गति', पर यह प्रायशः 'उछलना' अर्थ में प्रयुक्त देखा जाता है। अतः उछलने के कारण बन्दर और मेढक का नाम 'प्लव' रखा गया है। मेढक की उछाल के संबन्ध मे 'मण्डूकप्लुति' नामक एक न्याय भी प्रचलित है। कूद-फाँद कर उड़ने वाले पक्षी को भी 'प्लव' कहते है[2]। इस धातु का दूसरा अर्थ 'तरना' (तैरना) मिलता है[3]। प्रकृत धातु के णिजन्त-रूप 'तरण' या प्लावन अर्थ को अधिक स्पष्ट करते है। णिज्-रहित प्रयोगो में जलार्द्रता-भाव को व्यक्त करने के निमित्त 'प्र' उपसर्ग की योजना प्राकृत भाषा की अपनी विशेषता है। अतः प्रप्लव > पल्पुल < पल्पूल तथा प्रप्लुत > पप्पुअ का विकास वैदिक काल से पहले की भाषा मे जलार्द्रता अर्थ को व्यक्त करने वाले 'प्र + √प्लु' धातु के प्रयोग का अस्तित्व साधित करता है। यह जलार्द्रता अर्थ क्रमशः प्रक्षालन > प्रक्षारण और शोधन अर्थो में संक्रान्तिपूर्वक विकसित हो गया। बुन्देलखण्डी **परोरना'** क्रिया में शोधन के साथ-साथ 'प्लवन = उछालना' भी अभिप्रेत है। 'उछालने के साथ

---

१. 'कस लाज भय गर्वजुत चल्यौ **पपोरत** बाँह'—व्यास (हि॰श॰सा॰)।

२. 'कलविङ्क प्लवं हंसम्'—मनुस्मृति ५।१२।

३. 'क्लेशोत्तरं रामवशात् प्लवन्ते'—रघुवंश १६।६०=तरन्ति (सञ्जी॰)।

प्लवन्ते प्रस्तरा नीरे मानुषा घ्नन्ति राक्षसान्।
कपयः कर्म कुर्वन्ति कालस्य कुटिला गतिः॥

—उद्भटसागर, प्रथम प्रवाह, १४२ वाँ श्लोक।
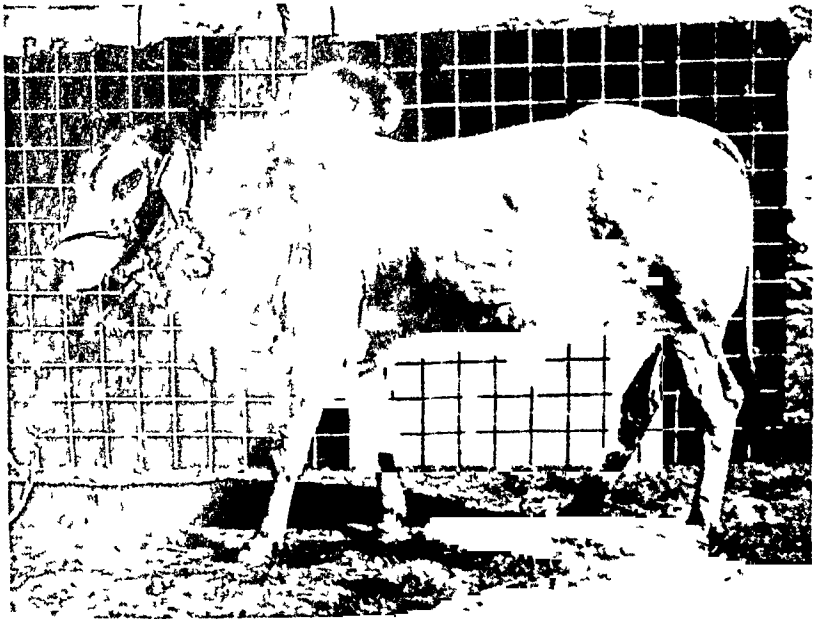
रथ नसल का साड
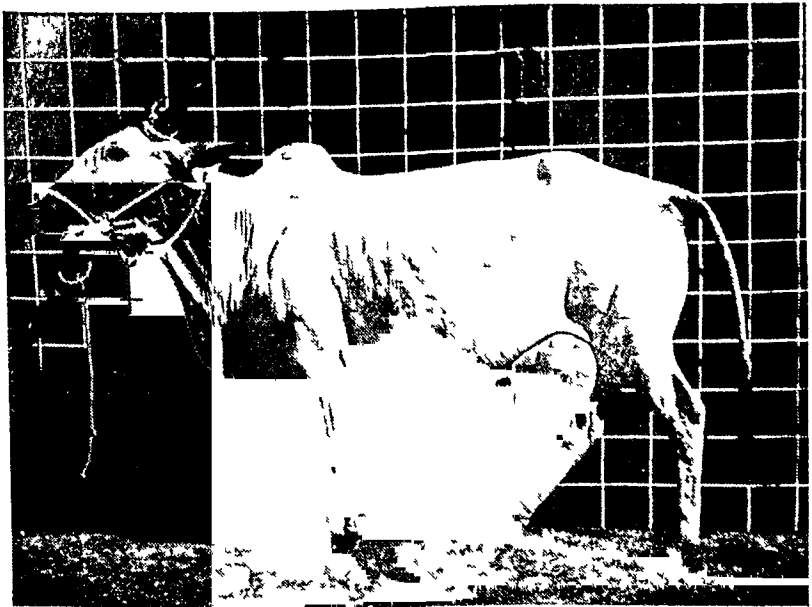
रथ नसल की गाय

मूँछ शब्द के विकास का इतिहास

किसी भी शब्द के मूल तक पहुँचने के विश्लेषण को व्युत्पत्ति कहते है—वि = विशेषतः + उत्पत्ति। संस्कृत भाषा मे विकास यद्यपि हुए है तथापि उन पर इस दृष्टि से विचार नगण्यप्राय किया गया है। अतः संस्कृत के विकासात्मक इतिहास का पता न लग सकने के कारण उन-उन शब्दो की व्युत्पत्ति के लिए धातु और प्रत्यय को खोज लेने मे ही इतिकर्त्तव्यता की चरम सीमा समझ ली जाती है। इस दशा मे निश्चयविहीनता के फलस्वरूप एक शब्द की अनेक व्युत्पत्तियाँ कर ली जाती है, अर्थ-सङ्गति भले ही न बैठे।

स्वयं निरुक्तकार एक शब्द की अनेक व्युत्पत्तियाँ दिखलाते है। लोम शब्द की व्युत्पत्ति के प्रसङ्ग मे वे लिखते है—'लोम लुनातेर्लीयतेर्वा' ३।५ = लोम शब्द की व्युत्पत्ति छेदनार्थक √लू धातु अथवा श्लेषणात्मक √ली धातु से समझी जानी चाहिए। निघण्टु शब्द की व्युत्पत्ति के लिए वे नि + √हन् और नि + √गम् दोनो धातुओ को प्रस्तुत करते है। सत्य एक होता है।

इसी प्रकार अन्त्र शब्द की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से की जाती है—१-बन्धनार्थक √अन्त् (अति) १।५६ धातु से औणादिक ४।१५६ ष्ट्रन् प्रत्यय। २-काशकृत्स्न जीवनार्थक √अन्त्र् १०।५ धातु को पृथक्शः पढ़ते है। यह धातु पाणिनीय संप्रदाय मे नही है। ३-√अम् १।४५६ धातु से दशोणादि ४।१५६ तथा उणादि ४।१२३ मे ष्ट्रन् प्रत्यय किया जाता है।

क्षीरस्वामी अमरकोशोद्घाटन मे अभ्र शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से तथा भानुजिदीक्षित रामाश्रमी टीका मे तीन प्रकार से दिखलाते है—१-न भ्राजते= जो दीप्त नही होता है—दीप्त्यर्थक √भ्राज् (भ्राजृ) धातु। २-अपो राति वा = जो जलदान करता है। १-भानुजिदीक्षित के मत मे—न बिभर्ति किञ्चित् = जो कुछ भी धारण नही करता। २-आपो भ्रश्यन्त्यस्मात् = जिससे जल गिरे। ३-अभ्रति = 'स्थैर्य को प्राप्त होने वाला'—गत्यर्थक √अभ्र् धातु।

इसी प्रकार का अनिर्धारण श्मश्रु शब्द की व्युत्पत्ति मे पाया जाता है। इसकी त्रिधा व्युत्पत्ति प्रस्तूयमान है—१-श्म = मुखं [श्मश्रु शब्द की टीका मे भरत] श्रयति = आश्रयति—'जो मुँह का आश्रय ले वह श्मश्रु—श्म + √श्रि + डुन् प्रत्यय [उणा० ५।२८]। २-निरुक्तकार के अनुसार—श्म = शरीरम्। शरीरं

परन्तु कुछ छोटे होते है। पूछ बीच की जाति की, काले बालो के गुच्छे-वाली होती है। मूतना छोटा और शरीर से सटा हुआ होता है, पर लटकवा नही होता।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा तापक्रम प्राय ३४° से ११६° फा० तक रहता है और प्रतिवर्ष वर्षा २० इच के लगभग होती है। ये पशु भारत के ऐसे भाग मे पाये जाते है जहा चरागाह कम है। रेतीला और कम वर्षा का इलाका होने के कारण यहा खेती भी कम होती है। यहा पशुओ की खुराक की कमी को दूर करने के लिए रातव (खली, दाना), खास करके ग्वार का दाना, खिलाने का रिवाज है। इसलिए यद्यपि इनका अस्थिपजर, शरीर और कद छोटा होता है परन्तु ये पशु मजबूत, गठीले और खासा अच्छा दूध देनेवाले एव खेती, सिंचाई और बोझ खीचने मे अच्छे होते है।

इस इलाके मे खनिज पदार्थो की कमी नही है। यहा कुओ से सिंचाई होती हे और पशुओ के लिए हरा चारा भी बोया जाता है।

गाय और बैल का गुण—इनका पालन-पोषण कम लागत मे हो जाता है, इस कारण ये गरीबो के पशु कहलाते हे। गाय ५-६ सेर दूध देती है। कोई-कोई इससे ज्यादा १०-१२ सेर तक भी देती है। गाय पहली बार करीब ४ वर्ष मे ब्याती है और बाद मे प्रति वर्ष या सवा वर्ष मे ब्याती है। बैल खेती और बैलगाडी खीचने के काम के लिए बहुत अच्छे होते है।

उन्नति के उपाय—ये पशु अपने इलाके के लिए ठीक हैं। इनमे कोई खास परिवर्तन की आवश्यकता नही मालूम देती। इनकी उन्नति इस जाति के अच्छे चुनैता पशुओ के समुचित चुनाव और छटाव के साथ बिना किसी बाहरी इलाके के पशुओ के सयोग के करनी चाहिए।

व्युत्पत्ति यों होगी—काष्ठपादुका (पाद्रू)>काठपादू>खटपाऊ [स्वयंभू अनुस्वार] >खटपाऊँ [ट>ड>ड़]>खड़पाऊँ [प-लोप]>खड़ाऊँ।

दूसरे प्रकार की विकासात्मक व्युत्पत्तियाँ [जो संस्कृत से पश्चात्तन भाषाओं के शब्दों के संबन्ध मे होती है] अत्यन्त निश्चयात्मक तथा ऐतिहासिक रूप मे उपस्थापित की जा सकती है, पर हम [भारतीय] अपनी विद्वत्ता की इतिकर्तव्यता यथेष्ट काल्पनिकता के उड्डयन-मात्र मे समझ लेते है। यह मार्ग, श्रवण (अध्ययन) मनन तथा निदिध्यासन द्वारा ज्ञानप्राप्ति का नही है। इसे तो हम उतावलापन कहेगे।

भारतीय आर्यभाषाओ मे मूंछ शब्द का क्रमिक विकास प्रस्तूयमान है—

'इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभिः प्रष्णुते'—ऋग्वेद ४,२६,७; 'वसेव श्मश्रु वपसि'—ऋ० वे० ४,१४२,४, केशश्मश्रु—शतपथब्राह्मण २,५,२,४८। [शतपथ-ब्राह्मण मे श्मश्रु से पूर्व केश शब्द का प्रयोग मननीय है] श्मश्रु>[पालि मे] मस्सु—दीघनिकाय २,४२, पुग्गलपञ्ञत्ति ५५; जातक ४,१५६>[प्राकृत मे] मस्सु—संक्षिप्तसार १२>[स्वयंभू अनुस्वार] मंसू—समवायाग सूत्र ६०; औपपातिक सूत्र। वत्स शब्द के उपान्त्य सकार को छकार (>वच्छ) होने के समान यहाँ भी स् के स्थान पर छ् हो गया है—मछू>[मकारोत्तरवर्ती अकार तथा छकारोत्तरवर्ती ऊकार का विपर्यय होने पर]—मूंछ>मोछ।

इस प्रकार उक्त विकासात्मक इतिहास के विद्यमान रहने पर भी मूंछ शब्द की व्युत्पत्ति 'मुंह पर छाई रहने वाली' करना कहाँ तक संगत है। छायी मूंछ को कतर या काट देने पर संभवतः उसे 'मूंक' कहेगे मुछारिया जी ! जो मूं=मुंह पर, क=कतर दी जाए ! वाह, तब तो भारतीय भाषाविज्ञान चूं चूं का मुरब्बा बन जाएगा। उसे साइकिल के हेंडिल या आसलेटिंग पंखे के सदृश चाहे जिस ओर घुमा दिया जा सकेगा।

अहा ! 'मूंक' की एकदेशीय शंका ने हमे विश्व-स्थित आर्यभाषाओ की स्मृति दिला दी। इण्डो यूरोपियन भाषा मे मूंछ<श्मश्रु के लिए मूल शब्द है[1]—* स्मेक्। इसकी अन्तिम क् (कण्ठ्य) ध्वनि का उच्चारण संस्कृत आदि [शतम् परिवार की भाषाओ] मे तालव्य होता है—श्। 'संस्कृत आदि शतम् परिवार की भाषाओ का 'श्' केन्टुम् परिवार की भाषाओ मे 'क' हो जाता

1. Alois walde : Vergleichendes worterbuch Indo-germanischen Sprachen herausgegeben und bearbeitet (Julius Pokor).

अम्वाला-कमिश्नरी के दक्षिण के जिले करनाल, रोहतक, जीद, हिसार, महेन्द्रगढ, गुडगाव और पश्चिमी राजस्थान के इलाके मे भारत के प्रसिद्ध हरियाना पशु मिलते है। ये पशु खूब दूध देनेवाले, भारी काम करनेवाले, तेज, फुर्तीले और दमदार होते है।

हिमाचल-प्रदेश मे किसी खास नसल के पशु नही होते। इस प्रदेश से लगे हुए पजाव के इलाके और पहाडी जाति के पशुओ के परस्पर सयोग से जो पशु उत्पन्न हुए है प्राय वे तथा पहाडी जाति के पशु यहा मिलते हैं।

पजाव मे कई प्रसिद्ध कैटिल-फार्म, मैनिक डेरी-फार्म तथा ऐग्रीकल्चर कालेज है जहा पशु-उन्नति के लिए प्रजनन का कार्य विधिवत् हुआ है और उसमे सफलता भी मिली है।

यहा के निवासी खूब हट्टे-कट्टे तथा मेहनती होते है। खेती-वाडी उनका मुख्य धन्धा है। ये लोग घी, दूध तथा छाछ के वडे शौकीन होते है, इसलिए ये लोग गाय, वैल तथा भैंस का भली प्रकार पालन-पोषण करते है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यहा के रहनेवालो को अच्छा दूध देनेवाली गाय तथा अच्छे काम करनेवाले वैल दोनो की ही आवश्यकता है जो किसी हद तक हरियाना नसल के पशुओ से पूरी होती है। साहीवाल नसल का मूल स्थान पाकिस्तान मे है। यद्यपि वे पजाव के कुछ उत्तरी-पश्चिमी भाग मे काफी सख्या मे मिलते हैं और पजाव के अलावा भारतवर्ष के अन्य भागो मे मिलते है इस प्रदेश की आवश्यकता को पूरा करने के लिए हरियाना नसल पर निर्भर किया जा सकता हैं। उनकी उन्नति विना वैल के गुण कम किये और विना वाहरी पशुओ के सयोग के, दूध वढाने की दृष्टि से समुचित एव वुद्धियुक्त चुनाव और छटाव की प्रणाली की जा सकती है।

१. हरियाना

रहने का स्थान—इनका निवास-स्थान अम्वाला कमिश्नरी के

'करना' (करबौ) की तूती

मेरे पास एक सज्जन आये। मैने उनसे पूछा—आप क्या करते है ? बोले—चखते है। मैने कहा—यह भी कोई करना है ? बोले—'आपकी कृपा से डेढ़ सौ रुपया मासिक मिल जाता है।' मिठाइयो की एक सुविशाल दूकान पर वह कर्मकर था।

पूछा करना। उत्तर दिया चखना। चखना भी करना है ? जी हाँ, चखना ही नही, जो कुछ आप कहेगे सब 'करना' होगा। बिचकिए मत, आपको कुछ करना नही होगा। हाँ, जो कुछ आप बोलेंगे, सब सकर्मक या अकर्मक क्रिया के अन्तर्गत होगा। क्या कहा ? क्रिया भी अकर्मक होती है ? कर्म=क्रिया, कर्मक=क्रिया-सहित, अकर्मक = क्रिया-रहित। अकर्मक क्रिया = क्रिया-रहित-क्रिया। वाह भाई वाह ! आपने तो बिना करने का करना, बिना काम का काम लगा दिया। जी, 'करना' की यही तो विशेषता है। 'करना' (क्रिया) करने पर 'करना' = फल, न मिले तो वह करना अकरना—करना = अकर्मक क्रिया कहलाएगा।

कोई भी धातु-रूप क्रिया होता है। इसलिए सभी धातुओ का अर्थ 'करना' हो जाएगा। 'करना' के जो कुछ आप चाहे सब अर्थ होते है। आप कहेगे कि 'हम इस विषय मे आपकी परीक्षा करना चाहते है'। मै निवेदन करता हूँ—'आप मेरी परीक्षा लेना चाहते हैं'। श्रीमान् जी, आपके 'करना' का अर्थ 'लेना' है। कृपया आप मनीआर्डर 'करिए'। महानुभाव ! इस 'करना' का अर्थ हुआ— 'भेजना'

मेरे पारमार्थिक मतानुसार तो 'करना' के अतिरिक्त किसी धातु का कोई अर्थ होता ही नही। सुखम् ! अधिकं सुखम् !! कोश रटने का श्रम घटा। किसी भी धातु का अर्थ 'करना' रसना पर बैठ गया। जी नही, 'करना'-रसगुल्ला रसना-गत करना नही है प्रत्युत समुद्र का तरना। आइए, आपको उसकी विहार कराऊँ—

'आप भोजन पकाइए'। पकाना 'करना' के अतिरिक्त कुछ नही। दर्जनो कार्य करने के पश्चात् उन समस्त कार्यों के स्थान पर एक शब्द कह दिया जाएगा—'पकाया'। पकाना मे 'करना' क्या है ? सुनिए—१—भोजन बनाने की इच्छा,

गड्ढे के निमित्त प्रयुज्यमान उपकरणो की क्रिया 'खोदना' से अनन्य है। अतः 'करना' का अर्थ हुआ—खोदना। 'रिपोर्ट करना' में 'करना' का अर्थ हुआ—लिखाना (प्रयोजक)। रास्ता करना = देना, रास्ता से अलग हटना। टीका करना = बनाना, टीका (तिलक) लगाना। 'हाथ करिए' मे करिए का अर्थ पसारिए, फैलाइए हुआ। दूकान करना = चलाना। खबर करो = दो, सुनाओ। नाम करना = कमाना, फैलाना। धुआँ करना = फैलाना, उड़ाना। बन्दूक करिए = सम्हालिए। बिछौना करना = बिछाना। चूल्हा करो = जलाओ। आग करो = जलाओ। चक्की करो = पीसो। आज्ञा करो = मानो, पालो। रोटी करो = पकाओ। चोटी करना = बाँधना। अञ्जलि करना = बाँधना। कंघी करना = (कंघी से) बाल सँवारना। पुत्र करना = उपजाना। दही करना = जमाना। चूना करना = पोतना। दातून करना = घिसना। मुँह करना = फाड़ना, खोलना। मही करना = बिलोना। बलि करो = दो। घड़ा करो = लगाओ।

महाभाष्यकार ने 'भूवादयो धातव.' (१।३।१) सूत्र पर 'करना' के नानार्थ का हृदयावर्जक उदाहरण प्रस्तुत किया है। यह संस्कृत की तात्कालिक लोक-प्रियता का उत्तम निदर्शन है—'पृष्ठं कुरु' 'पादौ कुरु' उन्मृदानेति गम्यते' = पिता-पुत्र नदी पर स्नान कर रहे है। पिता ने पुत्र से कहा—पृष्ठ कुरु = पीठ को करो = मलो। पादौ कुरु = पैरो को करो = मलो। भगवान् पतञ्जलि एक उदाहरण और देते है—'निक्षेपणे चापि वर्तते—घटे कुरु, कटे कुरु, स्थापयेति गम्यते' = 'करना' निक्षेपण मे भी होता है—घड़े मे करो = रखो, चटाई पर करो = रखो। महाभाष्य का स्थापनार्थक यही 'कुरु' बुन्देल-खण्ड में कुरोबौ 'कुरो दो' या कुरैबौ 'कुरै दो' हो गया[1]। यह 'कुरै' या 'कुरौ' शब्द ऐसी वस्तु के लिए प्रयुक्त होता है जो भरकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर डाली जा सके।

वेणीसंहार नाटक मे निराश युधिष्ठिर द्रौपदी से कहते है—'कृष्णे! न कश्चिद् अस्मद्वचनं करोति।' इसका सामान्यतः अर्थ हुआ—'हे द्रौपदि! कोई हमारा वचन नही करता'। वस्तुगत्या यहाँ 'करोति' = 'करना' का अर्थ है—'शृणोति' = सुनना। 'वचनम्' = वचन का अभिप्राय है—'वक्ति' = कहना से। वक्ति कहने पर एकदम छूटते ही अन्वय होता है—'शृणोति' =

---

१. यह कूटः > कूड़ा > कूरा शब्द का नामधातु नहीं है। कुरौ (< कुडव) और कुरैया शब्द भी 'कूट' से संबन्ध नहीं रखते। अन्न की राशि और कूरा का वाचक 'कुड' शब्द हिन्दी-शब्द-सागर में देशज बताया गया है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये लम्बे-चौडे, डील-डौल के और बडे कद के होते है। इनमे गाय का वजन ८०० से ८५० पौंड, बैल का ८५०-९५० पौंड और साड का ९५०-१००० पौंड तक होता है। खाल बदन से चिपकी हुई, पतली, बारीक और बढिया रोएवाली होती है। गाय सफेद और सफेद तथा हल्के भूरे रग की होती है। बैल प्राय सफेद होते है। साड सफेद होते हैं, परन्तु अक्सर उनका माथा, गर्दन और थुई के पास का हिस्सा और पिछले पैर के पुट्ठे हल्के भूरे व भूरे रग के होते है। कमर करीब-करीब सीधी, परन्तु थुई के पास नीचे को जरा झुकी हुई और चौडी होती है। पेट दोनो तरफ खूब फैला हुआ, बडा और नीचे की तरफ भी काफी फैला हुआ और भारी होता है। छाती चौडी और भरवा होती है। सिर चौडा, हल्का और सुडौल होता है। माथा चौडा होता है। सीग अच्छे मजबूत, शुरू मे दोनो तरफ को निकले हुए, फिर थोडा आगे को गोलाकार रूप मे होते हुए थोडा ऊपर को जाकर पीछे को एक-दूसरे की तरफ मुडे होते है। ये सिरे पर विशेष नोकीले नही होते। सामने या बराबर से देखने पर धनुषाकार के रूप मे दिखाई देते है। चेहरा लम्बा और पतला, परन्तु आखो के पास थोडा चौडा होता है। आख बडी और चौकन्नी होती है। भौह छोटी, नाक खासी विकसित और कान छोटे, पतले, परन्तु लटकवा नही होते। जब ये गर्दन ऊपर करते है तब इनके कान खडे हो जाते है। गर्दन मझले नाप की, पतली, लबी और मजबूत होती है। परन्तु साडो की गर्दन और खासकर हिसार के साडो की गर्दन मोटी, चौडी और भारी होती है। गलकम्बल बीच की जाति का थोडा लटकवा होता है। थुई खूब विकसित और भारी होती है। कूल्हे चौडे और भरे हुए होते है। ऐन खूब फैले हुए और विकसित होते है। थन बीच के माप के और अलग-अलग होते है। पूछ मध्यम श्रेणी की, काले तथा लम्बे बालो की, गुच्छेदार होती है। मूतना मध्यम श्रेणी का परन्तु कम-लटकवा होता है।

श्लोक में 'धर्मदेशनां कुर्वाणाः' तथा 'हेतुजालविनिर्मुक्ता धर्मदेशना न कुर्वते' वाक्य-गत 'कुर्वाणाः' 'कुर्वते = 'करना', प्रचार एवं शिक्षार्थ-परक है। अतः अर्थ होगा—'बुद्ध प्रभृति सब जगह धर्मापदेश की शिक्षा तो देते है (प्रचार करते है) किन्तु हेतु-जाल से विनिर्मुक्त धर्मदेशना के प्रचार का नाम तक नही लेते।'

'ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्' मनुस्मृति की इस अर्धाली मे 'धर्मं चक्रिरे' का सामान्यतः अर्थ हुआ—'धर्म किया'। सूक्ष्मेक्षिकया विचार करने पर प्रतीत होता है कि 'चक्रिरे' = 'करना' का तात्पर्य यहाँ 'विधान' अथवा व्यवस्थापन से है। अतः उक्त श्लोक का अर्थ हुआ—'ऋषियो ने विधि बनायी (व्यवस्था की) है कि जो अनूचान हो वह हममे बड़ा है।'

'करना' का समानार्थक विपूर्वक √धा (धारणपोषणयोः) धातु और अनु, व्यव पूर्वक√स्था (गतिस्थैर्ये) धातु भी है। इनके अर्थ एक दूसरे के द्वारा प्रसङ्गानुसार व्यवस्थापनीय होते है। इन तीनो मे—'करना' की विशेषता इसलिए है क्योकि यह धातु उक्त दोनो धातुओ के अर्थो को कह सकता है किन्तु उक्त दोनो धातु 'करना' अर्थ को पूर्णतः व्यक्त नही कर पाते। इसका कारण 'करना' की क्रियासामान्य-वाचकता है—(वाक्यपदीय, प्रकीर्णटीका, उपग्रह—१४)। 'धर्मं चक्रिरे'—गत भाव वि-पूर्वक √धा एवं व्यव-पूर्वक √स्था धातुओ द्वारा प्रतिपाद्य था; पर इस अर्थ को व्यापकत्वेन अभिव्यक्त करने की प्रभुता 'करना' में होने के कारण उस द्वारा ही कार्य लिया गया।

'करना' का सामान्य अर्थ देखकर विशेष अर्थ-सङ्गति सर्व-जन-सुलभ नही हो पाती। ऐसी दशा मे 'करना' से पूर्व प्रयुक्त विशेषण शब्द की क्रिया अथवा उसकी रूढ़ि द्वारा अर्थ-बोध दुष्कर नही होगा। उदाहरणतः वेणी-संहार (पूना संस्करण १८६७ ई०) मे युधिष्ठिर कहते है—'वृकोदरस्य उदक-क्रियां कुरु'= 'प्रिय भीमसेन की जल-क्रिया करो' उदक-क्रिया के सामान्यतः अर्थ आचमन, जलपान, स्नान, पाद-प्रक्षालन आदि होते है। जल-क्रिया का विशेष अर्थ 'जलाञ्जलि', तिलाञ्जलि होता है। क्रिया = 'करना' से पूर्व 'जल' शब्द प्रयुक्त हुआ है। यहाँ इसकी प्रासङ्गिक क्रिया 'दान' है। 'करना' के सामान्यवाचक होने के कारण जल-दान का सामान्य उपकरण अञ्जलि होगी। मरणोत्तर जलाञ्जलि (जल-दान) के साहचर्य से तिल का भी ग्रहण हो जाएगा। इस प्रकार उदक-क्रिया का अर्थ जलाञ्जलि और तिलाञ्जलि हो जाएगा।

अंग्रेजी भाषा में करना अर्थ वाले 'डज्, डू, डिड्' सहायक क्रिया के रूप

मे गिने जाते है। इनकी खूबी यह है कि ये भारी, तेज और फुर्तीले, सभी कामो के लिए उपयोगी होते है। बैलो मे दम भी खासा होता है। इस जाति के गाय और बैलो को यदि चरी का चारा और चने का दाना मिल जाय तो ये भारत की किसी भी जलवायु तथा धरती मे पनप सकते है।

उन्नति के उपाय—हरियाना जाति के गाय-बैल ही नही, बल्कि साड भी अपने गुणो के कारण बहुत अधिक सख्या मे हरियाना-प्रदेश से बाहर भेजे जाते है। भारत मे किसी भी जाति के पशु इतनी बडी सख्या मे अपने निजी स्थान से बाहर नही जाते। हरियाना के पशुओ की अपनी इलाके से बाहर जाने की यदि यही हालत रही और इस इलाके मे सगठित नसलोत्पत्ति और वश-सुधार का कार्य नही हुआ तो यह नसल सिर्फ खराब ही नही, बल्कि सम्भवत लुप्त भी हो जायगी। इस नसल के चुने हुए गाय और बैल दोनो मे वाछित सभी गुण काफी ऊचे दर्जे के विद्यमान है। इनके इलाके मे जहा-जहा भी सुविधाए है वहा यथाशीघ्र हरियाना जाति के चुने हुए पशुओ की पशुशालाए कायम होनी चाहिए और और वहा बिना किसी बाहर के इलाके के पशुओ के सयोग के तथा समुचित चुनाव और छटाव के आधार पर वशोन्नति का कार्य होना चाहिए।

अनुक्रमणिका

ऐसा प्रतीत होता है कि वहुत पहले वैष्णव-सम्प्रदाय के लोग काठियावाड से गिर जाति की गाये इधर लाये थे। उन गायो के साथ इस इलाके के हरियाना जाति के साडो के सयोग से मेवाती पशुग्रो की उत्पत्ति हुई। इसके अतिरिक्त यहा जो प्रजनन-कार्य हुआ है, उसमे कोई खास सफलता नही मिली।

इस इलाके के निवासी अधिकतर शाकाहारी हैं और दूध, घी, छाछ आदि का उपयोग करते है। यहा पशुओ को चराई के अलावा घर मे वाधकर भी खिलाने का रिवाज है। ये लोग गाय को धार्मिक भावना से और बैलो की उत्पत्ति के लिए और भैस को दूध के लिए पालते है।

१. मेवाती

रहने का स्थान—ये अलवर और भरतपुर के आसपास के पूर्वी इलाके मेवात मे और मथुरा जिला तथा सयुक्त-प्रान्त के पश्चिमी भाग मे मिलते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—इन पशुओ मे और हरियाना के पशुओ मे विशेष अन्तर नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत पहले किसी समय वैष्णव-सम्प्रदाय के लोग काठियावाड से गिर जाति की गायें इधर लाये थे। उन गायो के साथ इस इलाके के हरियाना जाति के साडो के सयोग से मेवाती पशुओ की उत्पत्ति हुई। इस सयोग से यहा के पशुओ का दूध वढ गया। इसलिए उनकी सतति फैल गई परन्तु अब यहा के पशुओं पर गिर जाति के पशुओ का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता जा रहा है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु डील-डौल मे ज़रा ढीले, कद मे ऊचे और खूब लम्बे होते है इनमे गाय का वजन ८०० पौड और बैल का ८००-८५० पौड, साड का ८५०-६०० पौड होता है। इनका रग सफेद और नर-पशुओ खासकर साड का माथा, गर्दन, कन्धे, पिछला भाग और थुई भूरे रग के होते है। किसी-किसी पशु मे ९ जाति के पशुओ के रग भी दिखाई दे जाते है। कमर सीधी परन्तु

घ

च

और नागौरी से अधिक दूध देती हैं। बैल बहुत मजबूत होते हैं। बैल भारी बोझा खीचने तथा गहरी जुताई के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु चलने मे उतने फुर्तीले नही होते, जितने हरियाना और नागौर जाति के बैल होते हैं।

उन्नति के उपाय—इस इलाके मे, खासकर पश्चिमी उत्तरप्रदेश मे धीरे-धीरे दाने-चारे की कमी हो जाने और जन-सख्या बढ जाने के कारण और खेती की फसल अधिक बोने तथा उनपर अधिक महत्त्व देने की वजह से पशुओ के खराब होने का एक कुचक्र आरम्भ होगया है। दिन पर-दिन पशु खराब होने आरम्भ होगये हैं। इस जाति के चुने हुए पशुओ के आधार पर नसलोन्नति करना आवश्यक प्रतीत होता है। गिर जाति के पशुओ से इन पशुओ का अधिक सयोग कराना ठीक नही मालूम देता। परन्तु पशु-विशेषज्ञो की राय से और उनकी देखभाल मे यदि हरियाना के पशुओ से सयोग कराया जाय तो लाभ हो सकता है।

२ मध्यम हरियाना

रहने का स्थान—मध्यम हरियाना जाति के पशु वास्तव मे निम्न हरियाना और मेवाती जाति के पशु है।

ज्यो-ज्यो गगा और जमुना के दोआबे मे पूर्व की ओर आगे बढते जाते है, त्यो-त्यो इनकी अवस्था अधिकाधिक बिगडी हुई मिलती है। खासकर के यमुना के पश्चिमी तट के इलाके के केनवारिया (केनकथा) जाति के पशुओ का जहा-जहा इनपर प्रभाव पडा है, वहा ये अधिक बिगडे हुए मिलते है। इसी प्रकार गगा के उत्तर-पूर्व के इलाके के पोआर और खेरीगढ पशुओ का जहा-जहा इनपर प्रभाव पडा है वहा-वहा ये अधिक बिगड गये है।

इनके रहने का स्थान पश्चिमी उत्तरप्रदेश मे गगा-यमुना का इलाका और पूर्व की ओर बिहार-प्रदेश की सीमा तक है।

कमी है वह दूर हो सके और इनकी उन्नति हो सके। यदि इनके प्रजनन का कार्य समुचित चुनाव और छटाव की प्रणाली से किया जाय तो इनमे काफी उन्नति की गुजाइश है। इसके अतिरिक्त पशु-विशेषज्ञो की राय से हरियाना, मेवाती और थारपारकर आदि किसी भी जाति क पशुओ से आवश्यकतानुसार सयोग कराया जा सकता है।

३ पोआर

रहने का स्थान—ये पशु पीलीभीत जिले की पूरनपुर तहसील मे, बरेली, मुरादाबाद जिलो के आसपास तथा उत्तरप्रदेश के खीरी जिले के उत्तर-पश्चिमी भाग मे मिलते हैं।

वशोत्पत्ति का इतिहास—पहाडी इलाके और खेरीगढ के पशुओ तथा उत्तरप्रदेश के पश्चिमी भाग के मझले पशुओ के सयोग से इनकी उत्पत्ति हुई है। वहा की जलवायु और स्थिति के अनुकूल ही इनका विकास हुआ है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु छोटे कद के और मध्यम लम्बाई-चौडाई के होते हैं। इनमे गाय का वजन लगभग ६०० पौड, बैल का ६००-६५० पौड और साड का ७००-७५० पौंड तक होता है। खाल और रोआ मध्यम दर्जे का होता है। इनका रग चितकबरा, सफेद, काला और कत्थई होता है। कमर सीधी, पेट दोनो तरफ खासा फैला हुआ और गहरा होता है। छाती मध्यम दर्जे की और माथा चौडा होता है। सीग ऊपर को उठते हुए दोनो तरफ बाहर की ओर फैलते है, फिर गोलाकार होकर ऊपर को उठते हुए पीछे को मुड जाते है। सिरे पर नोकीले और १-१। फुट लम्बे होते हे। चेहरा लम्बा और भरवा होता है। आख साधारण, नाक खासी विकसित और कान छोटे और खडे होते है। गर्दन छोटी और मजबूत होती है। गलकम्बल मध्यम जाति का लटकवा होता है। थुई मध्यम दर्जे की और विकसित होती है। गायो की थुई जरा छोटी होती है। कूल्हे छोटे होते है। पूछ

खेरीगढ का साड

खेरीगढ़ की गाय

सरयू नदी के किनारे-किनारे आगे सरयू, गगा के सगम तक पाये जाते हैं। इनको कही-कही भुर जाति के पशु भी कहते है।

वशोत्पत्ति का इतिहास—इस जाति के पशु किसी प्रतिष्ठित नसल के पशु नही है। इनकी उत्पत्ति पहाडी और आसपास के इलाके के पशुओ के सयोग से हुई है। सरयू नदी के किनारे पर कुछ अच्छी घास मिल जाती है और फसल अच्छी होने के कारण चारा भी मिल जाता है। इसलिए ये पहाड और पोआर जाति के पशुओ के मुकाबले मे कुछ अच्छे होते हैं।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु डील-डौल मे छोटे कद के और कम लम्बे शरीर के होते है। ये बहुत हल्के शरीर के और कम वजन के होते हैं। गाय का वजन लगभग ६०० पौंड, बैल का ६५० पौड और साड का ७०० पौंड तक होता है। इनकी खाल मोटी और रोआ मझली जाति का होता है। ये आमतौर से सफेद रग के होते हैं, परन्तु चितकबरे, सफेद और काले रग के भी पाये जाते हैं। कमर करीब-करीब सीधी होती है। पेट फैला हुआ और खासा विकसित होता है। छाती साधारण होती है। सिर भीडा, माथा ऊपर से कम चौडा परन्तु आखो के पास अधिक चौडा होता है। सींग १-१॥ फुट लम्बे और पोआर जाति से मिलते-जुलते होते हैं। दूर से देखने मे काकरेज पशुओ के सीगो की तरह मुडे हुए मालूम होते है। इनमे अन्तर इतना है कि खेरीगढ के पशुओ के सींग जरा पीछे को मुड जाते है और सिरे पर नोकीले होते है। चेहरा छोटा और भरवा होता है। आख और नाक मध्यम दर्जे के होते है। कान मध्यम दर्जे के, खडे होते है। गर्दन छोटी और मजबूत होती है। गलकम्बल छोटा और लटकवा होता है। कूल्हे छोटे होते है। ऐन बहुत कम विकसित होते है। थन भी छोटे होते है। पूछ बीच की दर्जे की, गुच्छेदार, सफेद और काले बालोवाली होती है। ,तन छोटा और थोडा खिचा हुआ होता है।

ये पशु देखने मे पोआर जाति के पशुओ से विशेष भिन्न प्रतीत नही

५ केनवारिया (केनकथा)

रहने का स्थान—ये पशु बुन्देलखण्ड की केन नदी के दोनो तरफ मिलते है और वादा जिले से लेकर पन्ना, विजयगढ, चरखारी, अजयगढ तक तथा जमुना के पश्चिमी इलाके मे मिलते हैं।

वशोत्पत्ति का इतिहास—ये किसी एक मूल नसल के पशु नही हैं। ये जहा मिलते हैं उस इलाके के आसपास के पशुओ के मिश्रण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनपर किसी समय पहाडी इलाके के पशुओ का विशेष प्रभाव पडा है। अपने इलाके की जलवायु, भूमि और खानपान के अनुसार इनका विकास हुआ है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु डीलडौल मे छोटे कद और लम्बाई के होते है। गाय का वजन ५५०-६०० पौंड होता है, बैल का लगभग ६०० पौंड और साड का ६००-६५० पौड होता है। कही-कही इन पशुओ का वजन इससे भी कम होता है। इनकी खाल और रोआ मझली जाति का होता है। ये आमतौर से भूरे और गहरे कत्थई रग के चितकबरे होते है। इनका पेट का हिस्सा अक्सर सफेद या भूरा होता है। कमर करीब-करीब सीधी होती है, परन्तु थुई के पास मामूली झुकी होती है। पेट डील-डौल की अपेक्षा खासा विकसित होता है। छाती साधारण, सिर छोटा और माथा चौडा और बीच मे कुछ दबा हुआ होता है। सीग खेरीगढ-जैसे, १-१।। फुट तक लम्बे और मजबूत होते है। ये सिर से निकलकर शुरू मे मोटे, बराबर मे फैलते हुए ऊपर को उठकर पीछे को मुडते है और सिर पर नोकीले होते है। सामने और पीछे से देखने मे इनके सीग काकरेज नसल के पशुओ की भाति दिखाई देते है। चेहरा कम लम्बा और भरा हुआ तथा थोडा मोटा होता है। आख मध्यम दर्जे की कुछ ढकी हुई-सी होती हैं। नाक साधारण, कान मामूली बडे, पतले और खडे होते है। गर्दन छोटी और मजबूत होती है। गलकम्बल डीलडौल के अनुसार बडा और लटकवा होता है। थुई खासी अच्छी निकसित होती है, परन्तु बहुत वडी नही

: १२ :

विहार के गाय-बैल

इस प्रदेश के उत्तर मे नैपाल और हिमालय पर्वत, पश्चिम मे उत्तर-प्रदेश तथा मध्यप्रदेश, दक्षिण मे उडीसा तथा पूर्व मे वगाल स्थित है।

यहा की भूमि रेतीली, दुमट और चिकनी तथ। कही-कही पथरीली है। प्राय वाछित खनिज पदार्थो की कमी है। यहा उत्तरप्रदेश की अपेक्षा गर्मी और सर्दी कम तथा वर्षा अधिक होती है। इस इलाके मे गगा, सरयू, कोसी आदि प्रसिद्ध नदिया वहती है। इनके आसपास का इलाका वडा उपजाऊ है, जहा वहुत अच्छी खेती होती है। यहा कुछ हिस्सो मे कुओ और नहरो द्वारा सिचाई होती है। यहा प्राय धान के पुआल और गेहू के अलावा खिसारी, मटर, गेहू, जौ, चना, अरहर का चारा और भूसा भी पशुओ को खिलाते है।

यहा विहार के प्रसिद्ध साहावादी पशुओ के अलावा इस प्रदेश के पश्चिम मे गगा के उत्तर और नैपाल की तराई तक उत्तरप्रदेश के पूर्वी और उत्तरी तराई के इलाके के सरयू नदी के पास के पशुओ के और साहावादी पशुओ के सयोग से उत्पन्न मिश्रित पशु मिलते है। विहार के पूर्वी भाग मे बचौर और लाल पुरनिया जाति के पशुओ की कुछ अच्छी देखभाल होने के कारण उत्तरी भाग और तराई के पशुओ की अपेक्षा वहा कुछ अच्छे पशु मिलते हैं। बगाल और आसाम मे इनकी माग खूब रहती है। ये पशु उत्तरी भाग के अन्य पशुओ की अपेक्षा खेती और वैलगाडी खीचने के काम मे अच्छे होते है। पूर्व और दक्षिण के हजारी-वाग, मानभूम, सिहभूम और पालामऊ की तरफ के पशुओ की हालत वहुत खराब है। वहा के वहुत-से भागो मे भैसो से खेती होती है। कही-कही तो गायो को भी हल मे जोता जाता है। गाडियो मे दो के बजाय

सूचना

पाठक कृपया ५५,५६ तथा ५७वें पृष्ठ के जजाहुति के स्थान पर जहाहुति पढ़ेगे।

१. साहाबादी पशु

रहने का स्थान—साहाबाद के पशुओ को उत्तरप्रदेश मे गगातीरी पशुओ के नाम से भी पुकारा जाता है। ये पशु उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलो मिर्जापुर, गाजीपुर, बलिया और विहार के साहाबाद (आरा), सारन (छपरा) और पटना के पश्चिमी भाग मे गगा और घाघरा के दोआबे मे बहुतायत से पाये जाते है।

वशोत्पत्ति का इतिहास—ये पशु असल मे मेवाती, हरियाना और गगा-घाघरा के दोआबे के मूल पशुओ के मिश्रण है। साहाबाद के क्षेत्र मे उत्तम खेती होती है और आबहवा अपेक्षाकृत खुश्क और पशुओ के पालन-पोषण के लिए अनुकूल है। यहा के लोगो की पशु-पालन मे विशेष रुचि है। उन्होने इन पशुओ की उन्नति के लिए मेवाती और हरियाना जाति के पशुओ के सम्मिश्रण का विशेष ध्यान रक्खा है और प्रजनन का कार्य समुचित चुनाव और छटाव की प्रणाली से काफी अर्से तक बराबर किया है, इसलिए इन पशुओ की एक प्रकार की नसल बन गई है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु मझले कद के लगभग ४-४$\frac{1}{4}$ फुट ऊचे और अपेक्षाकृत लम्बे शरीर के होते है। इनमे गाय का वजन लगभग ६५० पौड, बैल का ७०० पौड और साड का ७५० पौड होता है। इनकी खाल अपेक्षाकृत पतली और रोआ छोटा होता है। इनका रग अक्सर सफेद होता है, परन्तु कुछ पशुओ मे खासकर गर्दन, थुई, सिर, पुट्ठे, कूल्हे आदि का रग भूरा होता है। कमर करीब-करीब सीधी होती है। पेट दोनो तरफ फैला हुआ और खासा भारी होता है। छाती बीच के दर्जे की, अच्छी विकसित होती है। सिर साधारण चौडा और बीच मे ज़रा उठा हुआ होता है। माथा चौडा होता है। इनके सीग आरम्भ मे मोटे होते है फिर माथे से उठकर ऊपर को गोलाकार रूप मे उठते हुए अन्दर की ओर मुड जाते है और सिरे पर नोकीले नही होते। चेहरा लम्बा और भरवा होता है। आख खासी विकसित और चेतन होती है। नाक साधारण होती है। कान मझले

पण्णवणासुत्त
पाइअ सद्द महण्णवो
—पं० हरगोविन्ददास त्रिकमचंद सेठ
पाणिनीय धातुपाठ-समीक्षा
—डॉ० भागीरथप्रसाद त्रिपाठी 'वागीश शास्त्री'
पुग्गलपञ्ञत्ति
पेतवत्थु
पैप्पलाद संहिता
बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास
—गोरेलाल तिवारी
बुद्धकालीन भारतीय भूगोल
—भरतसिंह उपाध्याय
बुन्देली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन
—डॉ० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल
बृहत् संहिता (भट्टोत्पलटीकासंवलित)
—वराहमिहिर
ब्रह्माण्डपुराण
भारतभूमि और उसके निवासी
—जयचन्द्र विद्यालङ्कार
भारतवर्ष का इतिहास (द्वितीय भाग)
—डॉ० ईश्वरीप्रसाद
भारतवर्ष का बृहत् इतिहास
—भगवद्दत्त जी
'भूगोल' (पत्रिका)—प्रयाग
मत्स्यपुराण (जीवानन्द विद्यासागर, कलिकाता सं०) गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास— मुंबई
मराठी व्युत्पत्ति-कोश
—कृष्णाजी पाण्डुरंग कुलकर्णी
मरा० (= [illegible])
महाभारत (चित्रशाला प्रेस, पूना)
महाभाष्य - भगवान् पतञ्जलि
मार्कण्डेयपुराण
यशस्तिलकचम्पू
—सोमदेव सूरि
रघुवंश महाकाव्य— कालिदास
लिङ्ग-पुराण (मनसुखराय मोर संस्करण)
वामन-पुराण (खेमराज श्रीकृष्णदास, वेङ्कटेश्वर प्रेस, मुम्बई)
वायु-पुराण
वाल्मीकीय-रामायण
(गीताप्रेस, गोरखपुर सं०)
विष्णु-पुराण
वैखानस-धर्म-प्रश्न
वैदिक-पदानुक्रम-कोष
वैद्यक-रत्न-माला
वैयाकरण-सिद्धान्तकौमुदी
—भट्टोजिदीक्षित
शतपथ-ब्राह्मण
शब्द-कल्पद्रुम— राधाकान्त देव
शिवोपनिषद्
श्रीमद्भगवद्गीता
श्रीमद्भागवत (अनेकटीका-संवलित, वृन्दावन)
षड्-भाषा-चन्द्रिका—लक्ष्मीधर
सं० (=संस्कृत, संहिता, संज्ञा, संस्करण)
संक्षिप्त-सार
समवायाङ्ग सूत्र
सर्वेक्षण पत्रिका
[illegible]—डा० [illegible]

उन्नति के उपाय—यहा के पशु एक नसल के पशु कहे जा सकते है। इस इलाके के आसपास के पशु इन पशुओ की अपेक्षा घटिया जाति के हैं। इसलिए इनके प्रजनन का का कार्य समुचित चुनाव और छटाव द्वारा ही होना उचित है। फिर भी यदि अधिक उन्नति के लिए बाहर के पशुओ से सयोग कराने की आवश्यकता हो तो पशु-विशेषज्ञो की राय से हरियाना के पशुओ से सयोग कराया जा सकता है।

२. विहार के मध्य भाग के पशु

रहने का स्थान—ये पशु पहले वर्णित इलाके को छोडकर विहार के मध्य के इलाके मे गगा के दोनो ओर पाये जाते हैं। ये आसपास के इलाके के मिश्रित पशु है। गगां के उत्तरी भाग के पशु वचौर जाति के नाम से भी प्रसिद्ध है। वे प्राय दरभगा जिले के आसपास पाये जाते है।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—इस इलाके मे मिश्रित पशुओ के अतिरिक्त आवश्यकता पूरी करने के लिए बाहर से काफी पशु आयात किये गए हैं। पटना के कमिश्नर टेलर साहब ने आस्ट्रेलिया से साड मगाकर यहा छोडे थे। उनकी सतति स्थानिक पशुओ से ड्यौढा-दुगुना दूध देनेवाली हे और यह अभीतक मिलती है। कई जगह पशुओ की उन्नति की दृष्टि से पशु-प्रजनन का कार्य भी हुआ है। परन्तु वह कार्य निश्चित लक्ष्य की दृष्टि से और विधिवत् न होने के कारण इस इलाके के पशु-समुदाय पर उसका कुछ अच्छा प्रभाव नही हुआ।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु डीलडौल, कद, वजन, रग तथा अन्य शारीरिक बनावट मे विशेष रूप से साहाबादी तथा अन्य आसपास के इलाके के पशुओ से मिलते-जुलते होते हैं। ये साहाबादी पशुओ को छोडकर आसपास के इलाके के पशुओ की अपेक्षा कुछ अच्छे पशु होते हैं।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा तापक्रम प्राय ३६° से ११३° फा० तक होता है और वर्षा लगभग ४६ इच प्रतिवर्ष होती

को तमाम प्रदेश मे फैलाया जाय, तो सम्भव है, वाछित गुणोव॰ पशुओ से यह इलाका किसी समय भरपूर हो जाय।

३ उत्तर-पश्चिमी बिहार के सरयू और गंगा तथा नैपाल की तराई के बीच के पशु

रहने का स्थान—इस इलाके मे सीमा के आसपास के भाग मे खेरीगढ, गगा और सरयू के वीच के पहाडी, साहावादी और सीतामढी के आसपास के वचौर जाति के पशुओ से प्रभावित अवर्णनीय (नान-डिस्क्रुप्ट) पशु मिलते है। इनके रहने का स्थान गगा तथा नैपाल की तराई और पूर्व मे गडक नदी तक समझना चाहिए।

वशोत्पत्ति का इतिहास—इस इलाके मे अवर्णनीय (नान-डिस्क्रुप्ट) पशु होते है। यहा किसी मूल नसल या खास जाति के पशु नही होते। यहा अवतक अनिश्चित और वेढगे तरीके से पशु-प्रजनन का कार्य हुआ है। इस कारण पशुओ मे स्थायी गुण नही मिलते।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु छोटे कद के और मध्यम डीलडौल के होते है। इन पशुओ का वजन प्राय ५००-५५० पौड तक होता है। इनकी खाल और रोआ बीच के दर्जे का होता है। ये सफेद, भूरे और चितकवरे रग के होते है। इनकी कमर, पेट, छाती, सिर, माथा और सीग प्राय छोटे तथा चेहरा, आख, नाक, कान, गर्दन, गलकम्वल थुई, कूल्हे, ऐन, थन, पूछ और मूतना आसपास के पशुओ से प्रभावित और उनसे मिलता-जुलता होते है।

जलवायु, भूमि और खानपान का असर—यहा तापक्रम प्राय ३६ से ११३° फा॰ तक होता है। इस इलाके मे वर्षा ५० इच होती है। भूमि प्राय दुमट और चिकनी है। यहा वाछित खनिज पदार्थो की कमी है, परन्तु खेती खूब होती है। यहा पर अपेक्षाकृत अधिक जनसख्या होने के कारण भूमि पर मनुष्यो की खुराक और अनुपयोगी फसलो को पैदा ने का इतना भार है कि पशुओ को सिवाय उपर्युक्त फसलो के प्रायः

इस पुस्तक के विषय में

विद्वानो की सम्मतियाँ

इतिहास-अनुसधान मेरा प्रिय विषय होने के कारण मै इसे पढने का लोभ सवरण नही कर सका। वास्तव मे इस पुस्तक मे मौलिकता के दर्शन हुए। पुलिन्द की मौलिकता और संगति लगाने मे आपने पूर्ण श्रम किया है। उसमे यथार्थ का दर्शन होता है। आपकी विद्वत्ता और ज्ञान-गाम्भीर्य प्रत्येक पृष्ठ पर अंकित है। अभिनदन! आपने इस कृति के द्वारा बुन्देलखण्ड की महती सेवा की है और एक नवीन दिशा दी है। आशा है आप और खोज करेगे। आभारी

पद्मभूषण सूर्यनारायण व्यास (उज्जैन)

★

व्यापक और गम्भीर अनुशीलन के आधार पर नयी दृष्टि से बुन्देलखण्ड के प्राचीन भू-भागको निर्धारित करने का लेखक ने प्रयास किया है। उन्होने इस विषय पर अनाग्रह भाव से और तटस्थ दृष्टि से अनुशीलन-लब्ध सामग्री के आधार पर स्वपक्ष की उपस्थापना की है। अपने मत के प्रति प्रमाण-पुष्ट आस्था और निष्पक्षता-बोध के साथ-साथ पूर्वाग्रह का अभाव है।

सब मिलाकर ग्रन्थ मे विवेचित और मत-स्थापना के लिए सकलित सामग्री का महत्त्व पर्याप्त है। ग्रन्थ निर्माण के सबद्ध विषय की पूर्व उपलब्ध और विवेचित सामग्री एवं विषय के प्रस्तुतीकरण मे निश्चय ही तर्क-सगत नूतनता है।

करुणापति त्रिपाठी

(शिक्षा-शास्त्र-विभागाध्यक्ष, वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय)
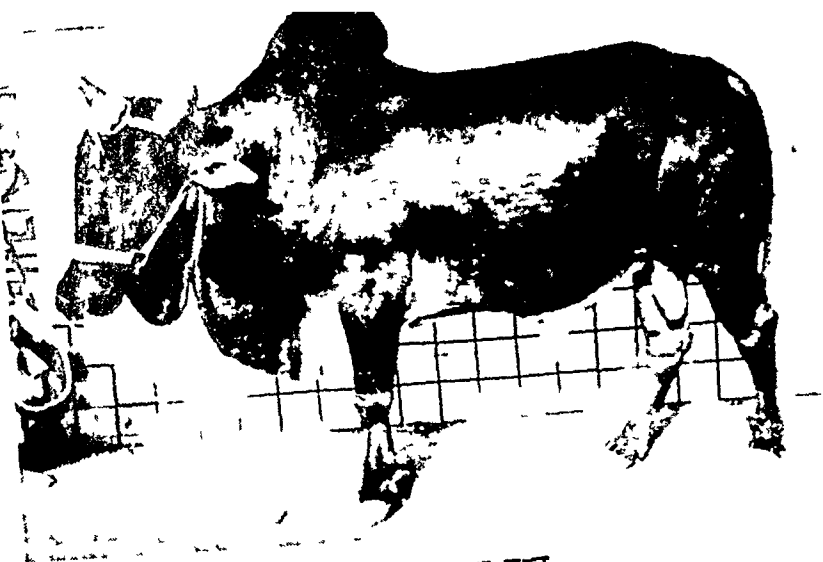
बचौर नसल का सांड

बचौर नसल की गाय

भूसे पर ही निर्भर करना पडता है। गोचर-भूमि कम है। पशु प्रायः आसपास की पडती धरती, खेतो के डौलो और बाग-बगीचो तथा ऊसर भूमि मे ही चर पाते हैं, इसलिए इनका अस्थिपजर और डीलडौल विकसित नही हो पाया है और ये दूध भी बहुत कम देते हैं।

गाय और बैल के गुण—गाय बहुत कम दूध देती है। सामान्यतः १-२ सेर, और अच्छी गाये ३-३॥ सेर के लगभग दूध देती हैं। ये पहले ४-५ वर्ष मे ब्याती हैं। बाद मे लगभग १॥ वर्ष मे ब्याती हैं। बैल छोटे और मझले कद के होते हैं और अपने मालिको का काम मुश्किल से कर पाते हैं।

उन्नति के उपाय—खाने-पीने और वाछित खनिज पदार्थों को पूरा करने का समुचित प्रबन्ध होने से ही यहा के पशु अब की अपेक्षा अधिक उपयोगी हो सकते हैं। आवश्यकता होने पर पशु-विशेषज्ञो की राय से बढ़िया पुर्निया सेनीगदी, साहाबादी और हासी पशुओ का सयोग कराकर इन पशुओ की उन्नति की जा सकती है।

होती है। भूमि दुमट और चिकनी होती है तथा यहा वाछित खनिज पदार्थों की कमी है। इस इलाके मे धान की खेती अधिक होती है। कोसी नदी के इलाके मे वर्षा इतनी अधिक होती है कि पानी भर जाता है। पानी भर जाने के समय पशुओ को चारा बिलकुल नही मिलता और वे भूख से पीडित और रोगग्रस्त होकर बहुत दु खी हो जाते है। प्राय धान के पुआल और खेती की उपज के आनुषगिको पर ही निर्भर करते है। इसलिए इनका पूरा विकास भी नही हो पाता और ये दूध भी कम देते है।

गाय और बैल के गुण—गाये बहुत कम दूध देती हैं। ये लगभग १-२ सेर दूध देती है। पहली बार ४-५ वर्ष मे ब्याती है, बाद मे लगभग १॥ वर्ष मे ब्याती है। इस इलाके के बैल खासे अच्छे काम करनेवाले और अच्छी तरह बोझा ढोनेवाले समझे जाते है।

उन्नति के उपाय—खाने-पीने और वाछित खनिज पदार्थों को पूरा करने का समुचित प्रबन्ध होने से ही यहा के पशु अब से अधिक उपयोगी हो सकते है। आवश्यकता होने पर पशु-विशेषज्ञो की राय से बढिया चुनैता साहाबादी और डागी जाति के पशुओ का सयोग कराकर इन पशुओ की उन्नति की जा सकती है। थारपारकर जाति की गायो को लाकर यहा के पशुओ से सयोग कराकर उनकी सतति की सहायता से यहा के पशुओ का प्रजनन का कार्य करके देखा जा सकता है कि इस प्रयोग से यहा के पशुओ की कहा तक उन्नति होने की सम्भावना है।

५. बिहार के पूर्वी-दक्षिणी भाग के पशु

रहने का स्थान—ये पशु प्राय बिहार के पूर्वी भाग, कोसी-इलाके के दक्षिणी भाग मे मध्यप्रदेश से लगे हुए इलाके तक और हजारीबाग, मानभूम, सिंहभूम तथा पालामऊ के इलाको मे पाये जाते है।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये पशु आसपास के इलाके के अवर्णनीय (नान-डिस्क्रिप्ट) पशु है। यहा की जलवायु तथा खानपान के असर से

ये पशु बिगड गये है और इनकी उन्नति की तरफ अभी तक किसी ने ध्यान नही दिया है। परन्तु बिहार के लालपुरनिया के पशुओ की आसाम, बगाल और उडीसा मे बहुत माग रहती है, क्योकि ये काम करने मे अच्छे होते है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु डीलडौल आदि मे मध्यप्रदेश के अत्यधिक वर्षा के इलाके के, तराई के और धान के इलाके के पशुओ से मिलते-जुलते है, कद छोटा होता है। रग लाल, गेरुआ और चितकबरा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खान-पान का असर—यहा तापक्रम प्राय. ३८° से ११०° फा० तक और वर्षा प्रति-वर्ष ५५ इच समझनी चाहिए। यहा की भूमि रेतीली, पथरीली और दुमट तथा चिकनी मिट्टीवाली है। इसमे वाछित खनिज पदार्थों की काफी कमी है। यहा वर्षा खूब होती है, धान की खेती बहुतायत से होती है। यहा के पशु धान के भूसे, पुआल और खेतो के डोलो, अन्य स्थानो मे तथा पहाडी भाग मे जो चराई मिलती है, उसपर निर्वाह करते है। इसलिए यहा के पशुओ का अस्थिपंजर और शरीर विकसित नही हो पाता।

गाय और बैल के गुण—गाये बहुत कम दूध देती हैं। बहुत कम दूध देने के कारण अक्सर उन्हे दुहा नही जाता। सम्भव है कि साधारण गाय औसत मे १ सेर भी दूध न देती हो। अच्छी गाय लगभग १-२ सेर तक दूध देती है। ये पहली बार लगभग ४ वर्ष मे, बाद मे औसतन दो वर्ष मे ब्याती है। लालपुरनिया जाति को छोडकर यहा के बैल भी कमजोर और कम काम करनेवाले होते है। इसी कारण इस इलाके मे काफी संख्या में भैंसे खेती का काम करते है। लेखक ने गाय और भैंसो को भी खेत जोतते देखा है। बैलो की कमी के कारण लोग गायो से भी हल चलाने का काम लेते हैं।

उन्नति के उपाय—खाने-पीने और वांछित खनिज पदार्थों को पूरा करने का समुचित प्रबन्ध होने से ही यहा के पशु अब से अधिक उपयोगी

हो सकते है। आवश्यकता होने पर पशु-विशेषज्ञो की राय से आसपास के बढिया चुनैंता पशुओ का सयोग कराकर इन पशुओ की उन्नति की जानी चाहिए। विशेष उन्नति के लिए छोटे कद के साहावादी या डागी पशुओ का सयोग कराया जा सकता है।

: १३ :

बंगाल के गाय-बैल

पशुओ के विवरण की दृष्टि से वगाल को निम्नलिखित तीन भागों मे वाट सकते है ·

१. सिक्किम और भूटान के दक्षिण मे, असम के पश्चिम मे और पूर्वी पाकिस्तान के उत्तर मे तथा विहार से लगा हुआ इलाका, जिसमे दार्जिलिग, जलपाईगुरी और कूचविहार के जिले सम्मिलित समझने चाहिए।

२ पश्चिम मे पूर्निया, भागलपुर, सथाल परगने से लगा हुआ और पूर्वी पाकिस्तान के बीच का गगा के दोनो पार का भाग जिसमे माल्दा, मुर्शिदावाद, वीरभूमि, नदिया और वर्दवान के उत्तर तक के इलाके सम्मिलित समझने चाहिए।

३. विहार के पूर्व, विहार और उडीसा के मयूरभज जिले के पूर्व, वर्दवान के दक्षिण और पूर्वी पाकिस्तान के पश्चिम और दक्षिण मे समुद्र तक चौवीस परगने तक का इलाका, जिसमे वर्दवान से लेकर वाकुरा, मेदिनापुर, चौवीस परगना, जैसोर और नदिया का पश्चिमी हिस्सा समझना चाहिए।

यहा प्राय चिकनी दुमट तथा पहाडी इलाके के कुछ भाग मे पथरीली भूमि मिलती है। यहा वाछित खनिज पदार्थों की काफी कमी है। इस इलाके मे गर्मी कम और पहाडी इलाके को छोडकर सर्दी भी कम तथा वर्षा अधिक होती है। यहा तमाम इलाके मे तरी अधिक रहती है। कुछ हिस्से को छोडकर गोचर-भूमि कम है। घनी वस्ती होने के कारण भूमि पर इतना दवाव है कि प्रति-मनुष्य हिस्से मे वहुत कम भूमि आती है।

लोग प्राय खेती पर ही निर्वाह करते है। यहा मुख्यतया धान की खेती होती है। इसके अलावा गेहू, अरहर तथा अन्य दाले, ईख, पाट (जूट) और तिलहन की उपज होती है। पशुओ के लिए चारा अलग बोने का रिवाज नही है और न ही पशुओ को चारे के अतिरिक्त खल-दाना आदि देते है। इसलिए पशु प्राय' धान के पुआल तथा अन्य भूसे, घास आदि पर निर्भर करते है। इस कारण वे काफी कमजोर होते है और पूरे विकसित नही होते। पशुओ के कम उपयोगी होने के कारण और यहा के निवासियो का खेती और दूध पर निर्भर करने के कारण पशुओ की सख्या दिन-प्रतिदिन बढती जाती है और उनकी उपयोगिता घटती जाती है। इस प्रकार पशुओ के पतन का एक कुचक्र स्थापित हो गया है।

पश्चिमी बगाल के पशुओ को सक्षेप मे तीन प्रकार के पशुओ मे विभाजित किया जा सकता है

१ जगली और पहाडी पशु। २ मैदान के पशु। ३ बगाल मे बाहर से आये हुए पशु।

उपर्युक्त पहले भाग के इलाके मे प्राय जगली और पहाडी पशु, दूसरे मे मैदान के स्थानिक मूल पशु और उनके बराबर बिहार के इलाके मे पशुओ का सम्मिश्रण और तीसरे मे वहा के स्थानिक मूल पशुओ के और बराबर के बिहार के इलाके के पशुओ का सम्मिश्रण तथा बगाल मे बिहार के इलाके से आये हुए पशु मिलते है, जो प्राय बडे कस्बो, जमीदारो के यहा और डेरी फार्म और केटिल फार्म तथा बडे शहरो मे 'पाये जाते हैं।

इस प्रदेश मे सिवाय श्री जाति के और आयात किये हुए पशुओ के तमाम प्रदेश मे मिलनेवाले पशु बहुत कम दूध देते है। यहा के बैल भी छोटे कद के कमजोर होते है। वे ज्यो-त्यो करके अच्छे बैलो के अभाव मे खेती और बैलगाडी खीचने का काम करते है।

कई बार अनेक स्थानो मे पशुओ की उन्नति का कार्य आरम्भ किया गया। सरकारी फार्मो पर भी पशुओ की उन्नति का कार्य हुआ। स्थानिक

मूल पशुओ का बिहार, उत्तरप्रदेश तथा पजाब के हरियाना और साहीवाल और कराची के निकट के सिधी तथा थारपारकर इत्यादि कुछ पशुओ से और हिन्दुस्तान के बाहर की एयरशायर नसल के और आस्ट्रेलियाई साड आयात करके इनसे सयोग कराकर इन पशुओ की उन्नति करने का प्रयत्न किया गया, परन्तु इस कार्य मे कोई खास सफलता नही मिली। आरम्भ मे पहली पीढी मे स्थानिक पशुओ मे दूध और डीलडौल भी उन्नत हुआ, परन्तु दूसरी पीढी मे यह स्थिति कायम नही रह सकी। तीसरी और बाद की पीढी मे हालत और भी खराब होगई और वे बगाल की विपरीत जलवायु, स्थितियो तथा वातावरण मे पनप न सके। इसलिए ये सब प्रयोग करीब-करीब असफल ही रहे। अब भी वहा कराची के निकट मिलनेवाले थारपारकर जाति के पशुओ से सयोग कराकर स्थानिक पशुओ की उन्नति करने का प्रयोग किया जा रहा है।

बगाल के पशुओ की उन्नति के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि स्वर्गीय कर्नल मौरगन, इन्सपेक्टर-जनरल ऑफ दी वैटर्नरी डिपार्टमेण्ट ने यह ठीक ही राय दी थी—"भारत के एक भाग के पशु दूसरे भिन्न स्थिति के क्षेत्र मे जाकर नही पनपेगे। किसी खास नसल के साडो को उसके इलाके से बाहर दूसरे भागो मे पशु-उन्नति की दृष्टि से ले जाना घातक होता है। इस प्रकार पशुओ की उन्नति करने के प्रयोगो और प्रयत्नो को रोक देना चाहिए। हमारा ध्येय दूसरे इलाके के भिन्न जलवायु और वातावरण मे रहनेवाले बिल्कुल भिन्न और बेमेल जाति या नसल के पशुओ से बिना सयोग कराये स्थानिक मूल पशुओ की उन्नति करने का होना चाहिए। इसके विपरीत करने से स्थायी उन्नति होने की कोई सम्भावना नही है। इसलिए यथासम्भव समुचित चुनाव और छटाव की प्रणाली से ही स्थानिक मूल पशुओ की उन्नति करना ठीक है। यदि कही इस प्रणाली से वाछित फल प्राप्त न हो तो शीघ्र उन्नति करने के लिए मिलती-जुलती जलवायु और अन्य पशु-पालन की अनुकूल स्थितियो के इलाको के ऐसे पशुओ से, जो कद और डीलडौल मे मिलते-

जुलते हो तथा जिनमे वाछित गुणो-वाली सन्तान पैदा करने की शक्ति भरपूर हो, सयोग कराकर प्रजनन-कार्य किया जा सकता है। यह प्रणाली कम खतरनाक हे।"

यहा के निवासी वहुत गरीव ह। वस्ती घनी होने के कारण खेती से भरपूर आमदनी नही हो पाती। पशु-पालन की स्थिति भी प्रतिकूल है, इसलिए इससे भी उन्हे पर्याप्त आमदनी नही होती। इस कुचक्र को दूर करने के लिए सिवा इसके कोई उपाय नही मालूम देता कि वहा आजकल जो भी उत्पादन होता है उसके वीच मे अधिकाधिक चारे की खेती आरम्भ की जाय और स्वर्गीय कर्नल मोरगन द्वारा सुझाये गए तरीके से पशु-प्रजनन का कार्य करके पशुओ को अधिक उपयोगी वनाया जाय, ताकि उनकी मदद से पशुओ और खेती दोनो से आमदनी वढ सके।

आगे इस प्रदेश मे पाई जानेवाली अन्य विभिन्न जातियो का परिचय दिया जाता है।

१. बंगाल के जंगली और पहाड़ी पशु

रहने का स्थान—जगली पशुओ मे याक या चवरी जाति के पशु थोडी सख्या मे दार्जीलिंग के उत्तरी बर्फीले भाग के जगलो मे मिलते हैं। ये पहाडो के बर्फीले इलाके मे वोझ खीचने और कही-कही दूध के उपयोग मे आते है अन्यथा ये जगलो मे स्वतन्त्र रूप से फिरते है।

पहाडी पशुओ मे गौर पशु हिमालय की तराई मे, ग्याल अथवा मिथुन पशु इस इलाके के उत्तरी-पूर्वी भाग से ब्रह्मपुत्र के पूर्वी इलाके तक, नेपाली पशु नेपाल से सटे हुए तटवर्ती इलाके मे और श्री पशु सिक्किम और भूटान के तटवर्ती तथा दार्जीलिंग के इलाके मे मिलते है।

(क) गौर

रहने का स्थान—ये पशु बगाल से लगे हुए हिमालय की तराई के इलाके मे मिलते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये पशु इस इलाके के मूल पशुओ मे से है। इनको पालने और इनकी उन्नति करने का कभी कोई विशेष प्रयत्न नही किया गया।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—गीर पशुओ की कुछ विशेष प्रकार की आकृति होती है। इस कारण ये दूसरे पशुओ मे फौरन पहचाने जा सकते है। बैल अपेक्षाकृत डील-डौल मे बहुत बडे, लम्बे कद के और मजबूत होते है। इनका माथा कुछ अन्दर को दबा हुआ या गहरा होता है, तथा इनके भूरे रग के बाल बाहर को निकले रहते हैं। इन बालो मे और इनके शरीर तथा सिर के बालो मे काफी अन्तर होता है। इनके सीगो के बीच का भाग उठा हुआ होता है। सीग आरम्भ मे मोटे और दोनो तरफ फैलते हुए आगे को मुडते हुए ये सिरे पर नोकीले होते है। यदि पीछे से देखा जाय तो ये गोलाकार जैसे दिखाई पडते है। नाप मे ये छोटे होते है। इनकी टागो के नीचे का भाग सफेद होता है और इनकी पूछ अपेक्षाकृत छोटी होती है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा तापक्रम प्राय २०° से ८८° फा० और वर्षा करीब ११० इच होती है। यहा पहाडी इलाके की जलवायु के कारण अधिक सर्दी और बहुत अधिक वर्षा होती है। इस कारण यहा अधिक नमी और कम गर्मी होती है। पशुओ को चराई अधिक मिलती है और ऊपर से खाने के लिए कम मिल पाता है, क्योकि यहा खेती कम होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पहाडी हिस्से मे वाछित खनिज पदार्थो की विशेष कमी नही है। इसलिए पशुओ का डील-डौल और विकास खासा होता है।

गाय और बैल के गुण—गाय बहुत कम दूध देती है। बहुत कम दूध देने के कारण इन्हे अक्सर दुहा भी नही जाता। बैल गाय की अपेक्षा अधिक साहसी और अच्छा काम करनेवाले होते है।

उन्नति के उपाय—बगाल के पहाडी इलाके मे जो भी पशु मिलते है उनमे सबसे बढिया श्री नसल के पशु है। इनकी गाय इस इलाके की

दृष्टि से बहुत दूध देती है और बैल अपेक्षाकृत अधिक काम करनेवाले होते हैं। यहा के पशुओ की उन्नति की तरफ अभीतक कोई विशेष ध्यान नही दिया गया है। बगाल के पहाडी इलाके मे केवल एक उदाहरण नेपाली पशुओ का मिलता है। श्री नसल के साडो से सयोग कराकर इनकी उन्नति का प्रयत्न किया गया है और इसमे कुछ सफलता भी मिली है। यह बात ठीक ही मालूम देती है। अत इस इलाके के पशुओ की उन्नति समुचित चुनाव और छटाव की प्रणाली द्वारा करना ही ठीक मालूम देता हे। जहा आवश्यक हो, एक-से कद के, मिलती जुलती आकृति वाले श्री पशुओ से सयोग कराकर इनकी उन्नति की जा सकती है।

(ख) ग्याल

रहने का स्थान—बगाल के जगल इनकी स्थिति के अनुकूल हैं। ये पशु नागा पहाडियो मे और अबोर के इलाके मे बहुतायत से पाये जाते हैं।

वशोत्पत्ति का इतिहास—ये पशु इस इलाके के मूल पशुओ मे से हैं। इनको पालने और इनकी उन्नति करने का कभी कोई विशेष प्रयत्न नही किया गया।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु आमतौर से गौर पशुओ से छोटे होते है। कद मे ४-४॥ फुट तक ऊचे होते है। इनका रग मटियाला और काला होता है, टागो के नीचे का हिस्सा सफेद होता है। इनकी झालर चौडी और बडी होती है। इनके थुई नही होती। यह इनकी आकृति की एक विशेषता है।

जलवायु, भूमि और खानपान का असर—यहा तापक्रम ३०° से ९०° फा० और वर्षा प्रतिवर्ष करीब १०० इच होती है। यह पहाडी और तराई का इलाका हे, इसलिए पहाडी इलाके की अपेक्षा यहा सर्दी कम है और गर्मी थोडी अधिक रहती है। यहा पशुओ को चराई मिल

नेपाली नसल का साड

नेपाली नसल की गाय
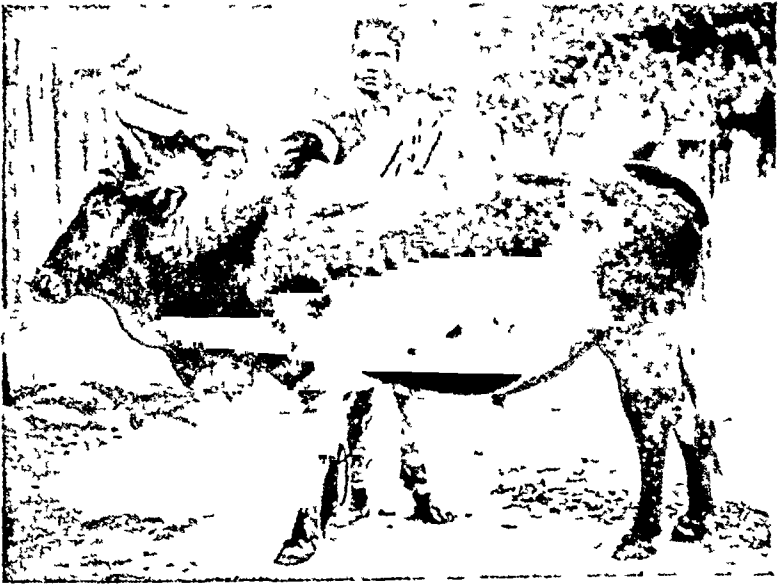
नेपाली नसल का साड

नेपाली नसल की गाय

हो। इसलिए इन पशुओ की वशोत्पत्ति के विषय मे निश्चयपूर्वक कुछ भी नही कहा जा सकता, सिवाय इनके, कि इनके गुण इनमे काफी हद तक कायम होगये हैं। इस इलाके के कुछ पशुओ का सयोग श्री नसल के पशुओ से हुआ है। इसके फलस्वरूप इस इलाके के पशुओ की कुछ उन्नति हुई है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु डीलडौल मे हल्के और छोटे कद के लगभग ४०-४५ इच ऊचे या इससे भी छोटे होते हैं। इनका रग गहरा गेरुआ और काला जैसा होता है। इन पशुओ के सीग दोनो तरफ फैलते हुए ऊपर को अर्द्ध गोलाकार रूप मे उठते है और सिरे पर पतले होते हैं। इनका गलकम्बल लटकवा होता है। धुई बहुत छोटी और कम विकसित होती है। इनके थन बहुत छोटे होते हैं।

जलवायु, भूमि और खानपान का असर—यहां तापक्रम ३०° से ९०° फा० और वर्षा प्रतिवर्ष करीब १०० इच होती है। ये पशु पहाडी इलाके मे पाये जाते हैं और प्राय चराई पर ही रहते है। यहा खेती कम होती है। क्योकि चराई के अलावा इन्हे खाने को विशेष नही मिलता, इसलिए ये पशु छोटे कद के होते है। परन्तु कद की दृष्टि से दूध देने और काम करने मे अच्छे होते हैं।

गाय और बैल के गुण—गाये लगभग दो सेर दूध देती हैं। बैल बडे मजबूत और खूब काम करनेवाले होते है। अपने गुणो के कारण ये गरीबो के पशु कहलाते है। इनकी विशेषता यह है कि ये पहाडो पर बडी फुर्ती से चढ जाते है।

इन पशुओ की उपयोगिता बढाने के लिए श्री जाति के साडो से इनका सयोग कराया गया है और इसमे कुछ सफलता भी मिली है। इनके मिश्रण को श्री-कुटया नसल के पशु कहते है। पशु-विशेषज्ञो की राय मे समुचित चुनाव और छटाव के साथ यदि श्री नसल की छोटे कद की गायो के साथ इस जाति के बडे कद की और अधिक दूध देने-वाली गायो की नरसतति (साडो) से सयोग कराकर प्रजनन का कार्य

श्री नसल का साड
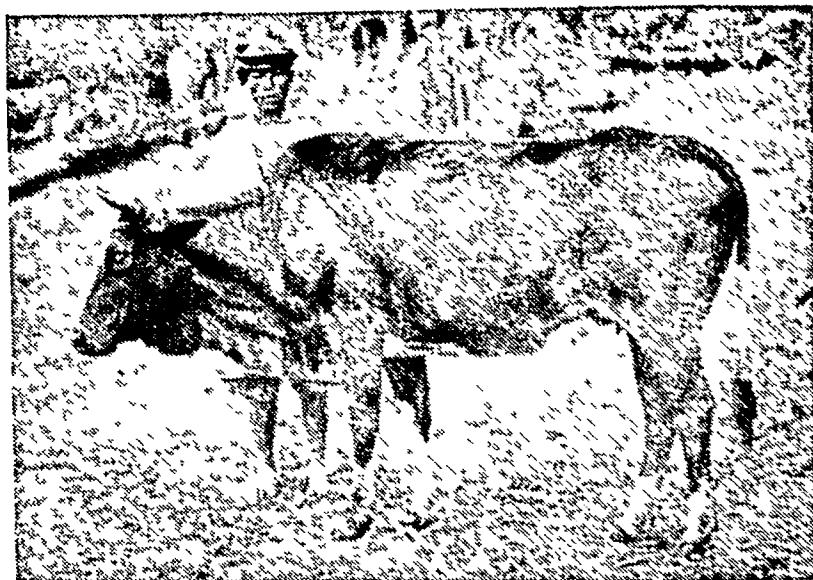
श्री नसल की गाय

किया जाय तो विशेष सफलता की सभावना है।

(घ) श्री

रहने का स्थान—ये पशु वगाल मे पहाडी इलाके, सिक्किम और भूटान के तटवर्ती इलाके तथा दार्जीलिंग के इलाके मे मिलते है।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये पहाडी इलाके मे पाये जानेवाले एक मूल नसल के पशु है और अपनी-जैसी अपने गुणोवाली सतान पैदा करते है। ये अपने इलाके के वाहर नही पनपते। जहा-जहा इस जाति के साडो को इस इलाके से वाहर ले जाकर वहा के पशुओ से सयोग कराया गया है उसमे सफलता नही मिली। इस वश के पशुओ के सम्बन्ध मे उपर्युक्त वातो के अलावा और कुछ जानकारी अभी तक प्राप्त नही हो हो सकी है। इनके थुई नाममात्र को होती है। इससे ऐसा विदित होता होता है कि ग्याल जाति के या विना थुईवाले विदेशी पशुओ से इनका कुछ सम्वन्ध रहा है।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु डीलडौल मे भारी और गठीले वदन के और कद मे ४-४॥ फुट तक के होते हैं।

इनके शरीर पर गहरे और मोटे वाल होते है। जाड़ो मे इनके वाल वहुत घनेरे हो जाते है। इनका रग काला-सफेद और गहरा कत्थई-सफेद होता है। इनकी पीठ समतल होती है। सिर छोटा, चौकोर और सुडौल होता है। माथा चौडा और चपटा होता है। इनके सीग चिकने और पतले होते हैं। ये आरम्भ मे मोटे होते है और दोनो तरफ फैलते और मुडते हुए फिर ऊपर को अर्द्ध गोलाकार रूप मे ज्यो-ज्यो उठते है त्यो-त्यो पतले होते जाते है। ये सिरे पर नोकीले होते है। इनके कान छोटे होते है। गर्दन भारी तथा भरी हुई होती है। इनकी थुई वहुत छोटी और कम विकसित होती है।

जलवायु और वर्षा पहाडी इलाके जैसी है। यहा के पशुओ को चराई खूब मिलती है। यहा खेती भी होती है। इन कारण इन्हे ऊपर से भी खाने के लिए मिल जाता है। ऐसा प्रतीत होना है कि इस पहाडी हिस्से मे वाछित खनिज पदार्थों की विशेष कमी नही है। इसलिए पशुओ का डीलडौल और विकास खासा होता है और वे दूध भी काफी देते हैं।

गाय और बैल के गुण—इस जाति के पशु इस इलाके मे और भारत के सभी पहाडी इलाको मे सबसे बढिया पशु होते है। गाये दूध देने मे खासी अच्छी होती है। ये प्राय प्रतिदिन ४-५ सेर दूध देती है। बहुत अच्छी गाये ८-९ सेर तक भी दूध देती है। इनके दूध मे मक्खन का अश बहुत होता है। बैल इस इलाके मे बहुत बोझ खीचनेवाले, मजबूत और अन्य काम करने मे बहुत बढिया समझे जाते है। इनकी खूब माग रहती है। ये पशु पहाडी, अधिक वर्षा वाले, तरी वाले और मच्छर इत्यादि के इलाके मे भी भली प्रकार पनपते है। इसलिए इन्हे भारत के पहाडी इलाके के आदर्श पशु समझना चाहिए।

उन्नति के उपाय—ये पशु भारत मे पहाडी इलाके के पशुओ मे सबसे बढिया पशु है। ये दूध भी काफी देते है। बैल काम करने मे काफी मजबूत होते है। इसलिए इनकी उन्नति समुचित चुनाव और छटाव की प्रणाली से विधिवत् प्रजनन का कार्य करके करनी चाहिए। लेखक की राय मे किसी बाहर के इलाके के पशु से सयोग कराकर इनकी उन्नति की चेष्टा नही करनी चाहिए।

२. बंगाल के मैदानी पशु

रहने का स्थान—ये पशु पच्छिम मे पूर्निया, भागलपुर, सथाल परगना से लगे हुए और पूर्वी-पाकिस्तान के बीच के भाग मे जलपाईगुरी से मालवा, मुर्शिदाबाद, वीरभूमि, नदिया और बर्दवान के उत्तर तक के इलाके मे पाये जाते है।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—असल मे यहा किसी मूल नसल के या
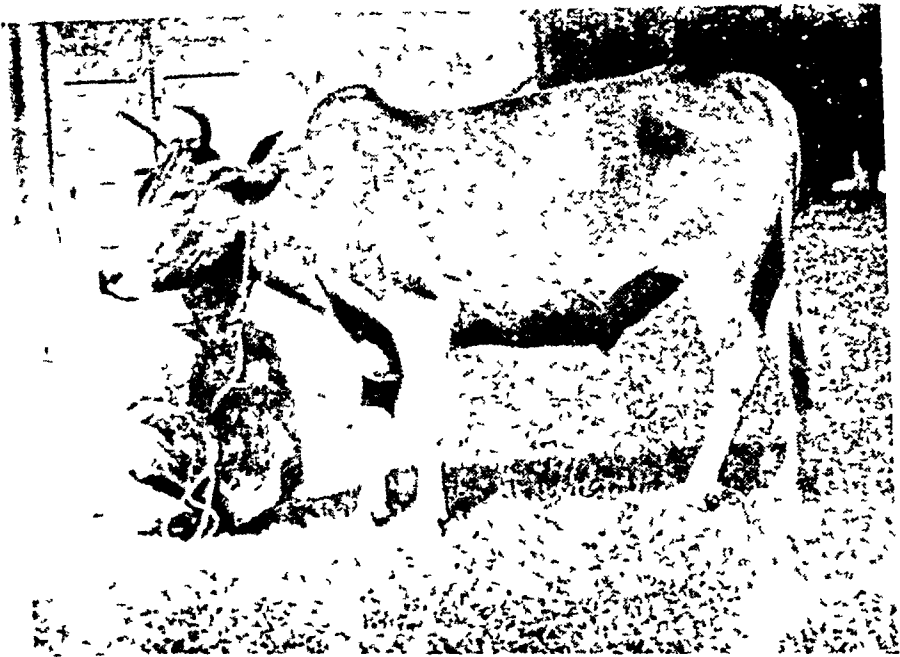
बंगला नसल का साड

बंगला नसल की टिपिकल गाय

किसी खास जाति के पशु नही होते। ये पशु बिहार के हिस्से के तटवर्ती पशुओ तथा पहाडी पशुओ का समिश्रण है।

इस इलाके मे कई बार पशु-उन्नति का कार्य आरम्भ किया गया और बगाल के बाहर के पशुओ के सयोग से भी प्रजनन का कार्य हुआ, परन्तु इसमे कभी कोई स्थायी सफलता नही मिली।

शारीरिक बनावट, वजन, रग आदि—ये पशु कद और डील-डौल मे छोटे होते है और देखने मे बिहारी और बगाल के पहाडी इलाके के पशुओ के बीच के स्वरूप के होते है। इनका वजन लगभग ४००-५०० पौड तक होता है। इनकी खाल ढीली और छोटे चमकदार रोएवाली होती है। कमर सीधी होती है। इनके सीग बगाल के पहाडी पशुओ की तरह माथे से निकलने पर मोटे होते है फिर ये आगे को अर्द्ध-गोलाकार रूप मे ऊपर को उठते है, अन्त मे पतले और सिरे पर नोकीले हो जाते है। इनकी गर्दन छोटी होती है। गलकम्बल और थुई भी छोटी होती है। इनकी पूछ छोटी और सिरे पर गुच्छेदार होती है। मूतना भी छोटा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा गर्मी-सर्दी ४०° से १००° फा० रहती है। वर्षा प्रतिवर्ष ६० इच तक होती है और नमी अधिक रहती है। खेती खूब होती है, विशेषकर धान की। यहा के निवासियो का मुख्य धन्धा खेती है। यहा जनसख्या इतनी अधिक है कि उनकी खुराक के लिए सघन खेती करनी पडती है और ज्यो-ज्यो खेती सघन होती है यहा के पशु खराब होते जाते है। यहा की भूमि मे वाछित खनिज पदार्थो की काफी कमी है, इसलिए यहा के पशुओ का अस्थि-पजर और डीलडौल विकसित नही हो पाता और वे छोटे कद के तथा कमजोर होते है और बहुत कम दूध देते है।

गाय और बैल के गुण—गाये बहुत कम, लगभग सेर-सवा सेर दूध देती है। बैल भी बहुत कमजोर और कम काम करनेवाले होते है।

उन्नति के उपाय—यहा के पशु पहाडी और तटवर्ती बिहार के

इलाके के पशुओ के समिश्रण है। यहा पशु-पालन की स्थिति भी अनुकूल नही है। इसलिए पशु-उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि यहा के पशुओ को खिलाने-पिलाने और वाछित खनिज पदार्थो की कमी की पूर्ति का समुचित प्रवन्ध हो। पशु-प्रजनन का कार्य समुचित चुनाव और छटाव की प्रणाली द्वारा करना चाहिए। यदि कही इस प्रणाली से वाछित फल प्राप्त न हो तो, या शीघ्र उन्नति करने के लिए मिलते-जुलते जलवायु और अन्य पशुपालन की अनुकूल स्थितियो के इलाके के ऐसे पशुओ से, जो कद और डीलडौल मे मिलते-जुलते हो और जिनमे वाछित गुणवाली सन्तान पैदा करने की शक्ति भरपूर हो, सयोग कराकर प्रजनन कार्य किया जा सकता है। ऐसे पशु साहावादी, हरियाना, थारपारकर तथा डागी हो सकते है।

३. बंगाल मे बाहर से आये हुए पशु

रहने का स्थान—बगाल के तीसरे भाग मे वर्दवान से लेकर विहार के पूर्वी तटवर्ती भाग से उडीसा के मयूरभज जिले के पूर्वी समुद्र-तट और वगाल के 'चौवीस परगना जिले से लेकर पूर्वी पाकिस्तान के पच्छिम और दक्षिण मे, जिसमे बर्दवान, वाकुरा, मिदनापुर, वीरभूम, जैसोर और नदिया का पश्चिम हिस्सा सम्मिलित है, पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये कोई खास नसल या जाति के पशु नही है। ये पशु वगाल मे बाहर से आये पशुओ और यहा के स्थानिक पशुओ के सम्मिश्रण है। यहा काफी सख्या मे बाहर से आयात किये हुए पशु निजी और सरकारी डेरी फार्म, कैटिल फार्म, वडे-वडे जमीदारो के यहा तथा वडे-वडे कस्वो मे और शहरो मे मिलते है। इस जाति के पशुओ की उन्नति के लिए यहा कई वार वगाल के बाहर से विहार, उत्तरप्रदेश, पजाब, सिध तथा थारपारकर इलाके के पशुओ का आयात करके प्रजनन का कार्य किया गया। कई वार भारत से वाहर के एयरशायर और आस्ट्रेलिया आदि देशो से भी साड मगाकर

यहा के पशुओ की उपयोगिता बढाने का प्रयत्न किया गया, परन्तु कोई स्थायी उन्नति नही हो पाई।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—बगाल के मैदानी पशुओ के डीलडौल का विवरण तो पहले दिया ही जा चुका है। बाहर से आयात किये हुए पशुओ की शारीरिक बनावट, डील-डौल, वजन, रग आदि, उनकी जाति या नसल के पशुओ तथा उनके स्थान के पशुओ के अनुरूप होता है। यहा आने पर यहा की जलवायु और वातावरण आयात किये हुए पशुओ की स्थिति के विपरीत होने के कारण वे कमजोर, भद्दे और कम उपयोगी हो जाते है। इनकी वर्णसंकर सन्तान स्थानिक पशुओ और उनकी जाति के मूल पशुओ से शक्ल-सूरत, शरीर की बनावट और उपयोगिता मे करीब-करीब मिलती-जुलती होती है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा गर्मी-सर्दी साधारण तथा वर्षा अत्यधिक होती है। यहा नमी भी अधिक है। खेती खूब होती है, विशेषकर धान की। यहा के निवासियो का मुख्य धन्धा खेती है। यहा जनसख्या इतनी अधिक है कि उनकी खुराक के लिए सघन खेती करनी पडती है। ज्यो-ज्यो खेती सघन होती है और मनुष्य-सख्या बढती जाती है, यहा के पशु खराब होते जाते है। यहा की भूमि मे खनिज पदार्थों की काफी कमी है। यहा जो पशु बाहर से आयात किये जाते है, यद्यपि उनकी देखभाल और खिलाई-पिलाई अच्छी होती है फिर भी वे अपने मूल स्थान से कम उपयोगी हो जाते है। उनकी वर्ण-सकर सन्तान और भी कम उपयोगी हो जाती है। इस स्थान की जलवायु तथा अन्य स्थितिया इन पशुओ के माफिक नही आती।

गाय और बैल के गुण—इस स्थान की गाय बहुत कम दूध देती है और बैल भी [illegible] है। [illegible] और बैल भी [illegible], [illegible] नही होते।

उन्नति के उपाय—इस इलाके के मैदानी पशुओ की उन्नति के सम्बन्ध मे पहले लिखा जा चुका है। आयात किये हुए पशुओ की उन्नति के लिए उन्हीकी नसल या जाति के साड को उन्हीके साथ आयात करके और उनसे ही सयोग कराकर वश-वृद्धि करानी चाहिए।

: १४ :

असम के गाय-बैल

इस प्रदेश के उत्तर मे भूटान और ल्हासा तथा सिक्याग से सटा हुआ हिमालय पर्वत है। पूर्व मे बर्मा, दक्षिण मे पाकिस्तान का हिस्सा और पश्चिममे बगाल का कूचबिहार तथा पाकिस्तान का रगपुर जिला स्थित है। यहा प्राय चिकनी, दुमट तथा पहाडी इलाके के भाग मे पथरील भूमि मिलती है। यहा वाछित खनिज पदार्थो की काफी कमी है। मैदानी इलाके मे गर्मी कम, सर्दी साधारण और वर्षा बहुत अधिक होती है। पहाडी इलाके मे सर्दी और वर्षा दोनो ही बहुत होती है। यहा पशुओ को चराई खूब मिलती है। यद्यपि यहा चारा बोने का रिवाज नही है, तब भी खेती से खाने-पीने को काफी उपलब्ध हो जाता है। फिर भी वाछित खनिज पदार्थो की कमी और अत्यधिक वर्षा होने के कारण यहा पशु कमजोर होते है। वर्षा-ऋतु मे पशुओ को खाने को पर्याप्त मात्रा मे नही मिलता। इस कारण वे वर्षा और भूख से इतने दुखी होते है कि हमेशा के लिए दुष्प्रभावित हो जाते हैं।

इस प्रदेश मे किसी खास जाति या नसल के पशु नहीं होते। यहा जो पशु मिलते हैं वे बगाल के पहाडी इलाके मे श्री, गौर और ग्वाल पशुओं से मिलते-जुलते होते हैं। इसके अलावा इन जैसे ही पशु नागा पर्वत, खासिया, मनीपुर के इलाके, जैन्तिया पर्वत और अन्य स्थानो मे तथा [illegible] देश के तटवर्ती भाग मे पाये जाते हैं। बर्मा के तटवर्ती इलाके के पशु इन इलाकों के अन्य पशुओं की अपेक्षा दूध देने और काम करने मे अच्छे होते हैं।

इन इलाकों मे पशु-उन्नति के लिए कहीं-कहीं कुछ कार्य हुआ है,

तटवर्ती इलाके मे कुछ ऐसे पशु भी मिलते है जो उस इलाके के पशुओ से प्रभावित होते है।

यहा के पशु बहुत सीधे, कमजोर, छोटे कद के, कम दूध देनेवाले तथा जैसे-तैसे करके खेती और अन्य स्थानिक कार्यो को करनेवाले होते है। यहा की स्थिति पशुपालन के प्रतिकूल है। जबतक इसमे सुधार न होगा तबतक पशु-सम्बन्धी-विकास एव उन्नति का कार्य सभव नही है।

सरकारी-पशु-विभाग ने कही-कही पशु-प्रजनन और उनके विकास, तथा रोगो की रोकथाम का कार्य किया है, परन्तु स्थिति प्रतिकूल होने के कारण उसका कोई खास असर नही हुआ।

यहा के निवासी बहुत गरीब, कमजोर, अपेक्षाकृत कम काम करने वाले होते हैं। खेतीबाडी ही इनका मुख्य धन्धा है। इससे इन्हे इतनी आमदनी नही हो पाती जिससे रहने का स्तर ऊचा उठ सके। इसलिए यह आवश्यक है कि खेती की उपज बढे और गाय अधिक दूध देनेवाली तथा बैल अधिक काम करनेवाले हो।

इस स्थिति को सुधारने के लिए पशुओ को घर मे ठीक समय काटकर इकट्ठी की हुई घास तथा चारे के साथ अन्य वाछित खनिज-पदार्थों के खिलाने का रिवाज प्रचलित करना परमावश्यक है। इसके साथ-साथ पशुओ के लिए हरा चारा जहा कही भी सिंचाई का प्रबन्ध हो सके बोना होगा, ताकि वहा के पशुओ को आवश्यक पौष्टिक खुराक खिलाई जा सके और उसके अभाव मे ऊपर से खली-दाना खिलाना होगा। इसके बाद उन्नति के लिए प्रजनन-कार्य करना उचित होगा। डागी और निमारी जाति के पशुओ से यहा के पशुओ का सयोग कराकर उनकी अधिक उपयोगी वर्ण-सकर सन्तति का पारस्परिक सयोग से तथा समुचित चुनाव और छटाव से उन्नत पशु उत्पन्न करने और उनको फैलाने का कार्य किया जा सकता है।
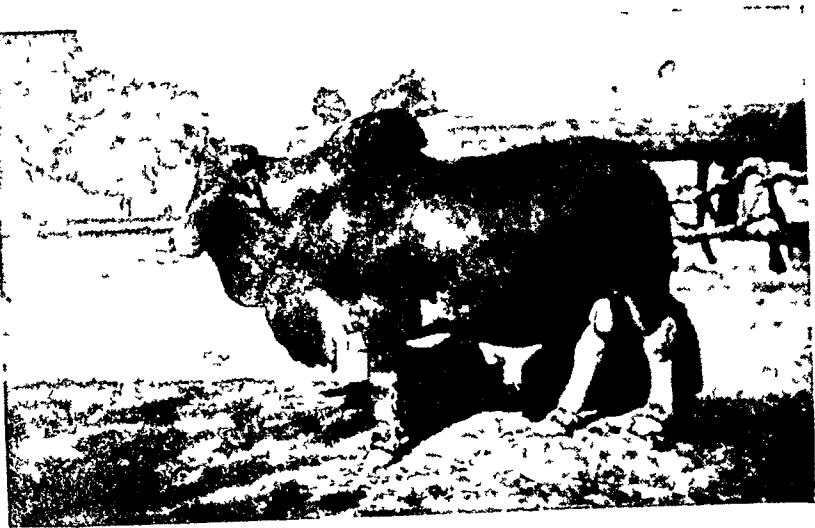
साहीवाल नसल का सांड

साहीवाल नसल की गाय

: १६ :
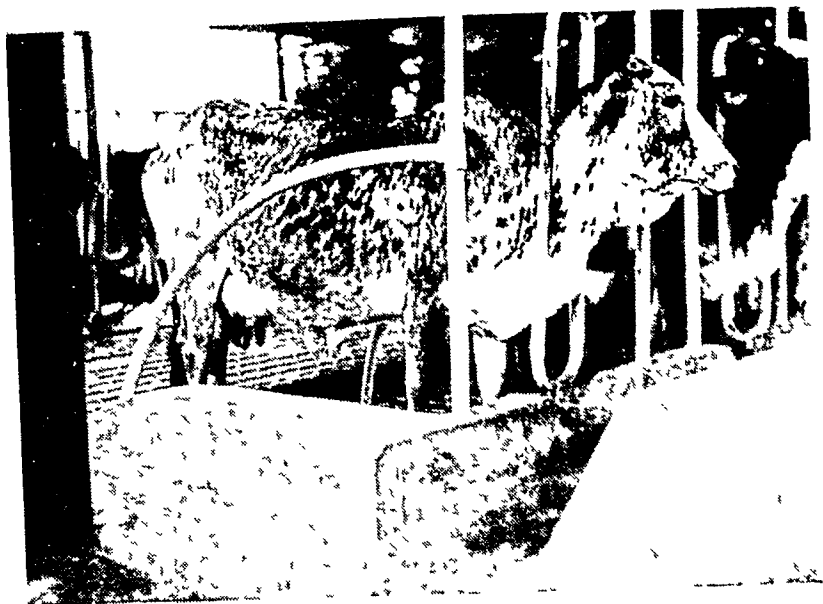
पाकिस्तान के प्रमुख पशु

पूर्वी पाकिस्तान मे किसी खास नसल या जाति के पशु नही मिलते हैं। वहा के पशु पश्चिमी बगाल के पशुओ-जैसे ही होते है। पश्चिमी पाकिस्तान मे सिंध और साहीवाल दो प्रमुख नसलो के पशु मिलते है। इन दोनो नसलो के पशुओ की उन्नति करने के लिए भारत मे विशेष रूप से कार्य हुआ है। इस कार्य मे सफलता भी मिली है। इन दोनो नसलो के पशुओ की विशेपता यह रही है कि जहा भी उन्हे गवर्नमेट फार्म, कृपि कालेज तथा अन्य सरकारी-गैरसरकारी सस्थाओ मे पालने की समुचित सुविधाए मिली है वहा ये पनप सके है। वहा की स्थानिक जलवायु एव स्थितियो का इनपर कोई विपरीत असर नही पडा। इसलिए आजकल भी भारत मे ये काफी सख्या मे इधर-उधर पाये जाते हैं, खासकर उपर्युक्त सस्थाओ मे। दोनो जातियो के पशु दूध देने के गुण के लिए अति उत्तम है। इन जातियो के वैल यद्यपि अच्छे नही समझे जाते, फिर भी धीरे-धीरे काम करने के लिए खासे होते है। भारत मे इस समय अवर्णनीय पशु (नान-डिस्क्रुप्ट), और ऐसी जाति के पशु, जिनकी गाये वहुत ही कम दूध देती है, उनकी उन्नति और उनमे अधिक दूध देने की क्षमता वढाने के लिए कही-कही इनसे सयोग कराया जाता है। आजकल भारत के अवर्णनीय या निकम्मे पशुओ की क्रमश उन्नति (अपग्रेडिग) के लिए इन्हे भारत मे पाला जा रहा है। इन दोनो नसलो के पशुओ का वर्णन नीचे दिया है।

१. साहीवाल

रहने का स्थान—ये पाकिस्तान मे पंजाव के मध्यवर्ती तथा दक्षिणी

सूखे भागो मे होते हैं ।

वशोत्पत्ति का इतिहास—यहा की भूमि रेतीली होती है। पजाब मे नहरो का विस्तार होने से पहले वहा चराई के लिए, बडे जगल और मैदान थे। ये भाग नहरो के आने के बाद खेती की पैदावार के लिए बहुत उपजाऊ और अच्छे होगये है। यहा के मनुष्य हृष्ट-पुष्ट और दूध-घी खाने के शौकीन होते है। इसके अलावा रेतीली भूमि और पशुओ की सख्या अधिक होने के कारण खेतो की जुताई का काम यहा के मौजूदा साधारण और सुस्त बैलो से भी हो जाता था। इसलिए उन्होने नसलोत्पत्ति के समय अधिक दूध देने के गुण की तरफ ही विशेष ध्यान रखा और इसी दृष्टि से इनकी वशोत्पत्ति की। अधिक दूध देने के गुण के कारण पजाब के कस्बो, बडे शहरो और मडियो मे इस नसल की गायो की बडी माग है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु ठिगने, भारी, मोटे और अपेक्षाकृत लम्बे शरीर के होते है। गाय का वजन ८००-८५० पौंड, बैल का लगभग ८५० पौंड तथा साड का ९००-९५० पौंड तक होता है। खाल पतली तथा ढीली और रोआ बीच के दर्जे का होता है। ये गेरुए, सफेद, काले, हल्के लाल और चाकलेटी रग के चकत्ते व दाग लिये हुए चितकबरे और केवल गेरुए रग के होते है। कमर प्राय सीधी, होती है, परन्तु थुई के पास झुकी हुई कमर के भी पशु होते हैं। पेट दोनो तरफ खूब फैला हुआ, बडा, मोटा और भारी होता है। छाती चौडी, सिर बीच के दर्जे का, परन्तु बीच मे थोडा ऊपर को उभरा हुआ होता है। माथा भी बीच के दर्जे का होता है। सीग छोटे और बाहर की तरफ निकले हुए और ऊपर को उठे हुए और बडे गटीले होते है। चेहरा बीच के दर्जे का और भरवा होता है। आखे अच्छी विकसित, नाक थोडी बडी होती है। कान बीच के दर्जे के लटकवा होते है। गर्दन छोटी और मोटी होती है। गलकम्बल बीच के दर्जे से थोडा बडा और लटकवा होता है। थुई खूब विकसित और भारी होती है। कूल्हे खूब फैले हुए और मजबूत

होते है । ऐन बडे और थोडा लटकवा होते है । थन बीच के माप के परन्तु एक-दूसरे से विशेष दूर नही होते । पूछ लम्बी और काले बालो की गुच्छेदार होती है । मूतना बडा और लटकवा होता है ।

जलवायु, भूमि और खानपान का असर—यहा तापक्रम प्राय. ३५° से ११८° फा० और वर्षा प्रतिवर्ष करीब १० से २० इच होती है । इन पशुओ के इलाके मे आरम्भ मे जगल और घास खूब थी, और यहा वाछित खनिज पदार्थों की कमी नही थी। जब नहर निकली तो चारा खूब मिलने लगा, इसलिए शरीर की बढोत्तरी खूब हुई और उसे कायम रक्खा जा सका।

गाय और बैल के गुण—ये गाये बहुत अच्छा दूध देनेवाली होती है । ८ से १० सेर दूध देनेवाली गाय आसानी से मिल जाती है । वैसे तो इस जाति की उत्तम गाय १५-२० सेर दूध भी देती है । भारत मे अब भी सबसे अधिक दूध देनेवाली गाय साहीवाल ही समझी जाती है । इसी कारण फौजी विभाग के डेयरी फार्म मे इनको बहुतायत से रक्खा जाता है। यह लगभग चार वर्ष मे पहली बार ब्याती है । फिर हर साल ब्याती रहती है। बैल इसके सुस्त होते हैं। भारी बोझ खीच सकते हैं, परन्तु दमदार नही होते ।

उन्नति के उपाय—इस नसल के पशु पाकिस्तान के इलाके मे होते हैं । दूध के लिए ये बहुत बढिया जाति के पशु है । इसके अलावा इनमे यह विशेष गुण है कि ये भारत के हरेक हिस्से मे हर प्रकार की जलवायु मे पनपते है । इसलिए भारत मे फौजी दुग्धशालाओ तथा अन्य सरकारी और गैरसरकारी फार्मो मे अधिक दूध के गुण के कारण तथा पशु-प्रजनन के प्रयोग के लिए इस नसल के पशु पाले जाते हैं । वहा इनके दूध देने के गुण को बढाने का प्रयत्न भी किया जाता है । ये पशु केवल दूध देने के लिए अच्छे होते है और इनके बैल अच्छे नही होते और न ही इनको भारत की जनता किसी खास इलाके मे पालती है । इसलिए बडे पैमाने पर भारत मे इनकी वशोन्नति का प्रश्न ही नही उठता ।

सिंधी

रहने का स्थान—पाकिस्तान के सिंध और कराची के आसपास और उसके उत्तर-पश्चिम के इलाके मे तथा इससे लगे हुए विलोचिस्तान के कुछ हिस्सो मे ये पशु मिलते है। यह भारतवर्ष की नसल नही है, परन्तु अपने गुण के कारण यह नसल भारत के कई हिस्सो मे मिलती है। इसलिए इनका सूक्ष्म वर्णन दिया जाता है।

वशोत्पति का इतिहास—ऐसा प्रतीत होता है कि ये पशु गिर नसल और अफगानिस्तान के पशुओ का मिश्रण है, परन्तु कराची के और इसके आसपास के इलाके मे इन पशुओ का प्रजनन-कार्य एकमाफिक वहुत समय तक होता रहा है। इस कारण इनकी एक पृथक् मूल नसल वन गई है।

शारीरिक वनावट, वजन, रग आदि—ये पशु देखने मे वहुत सुन्दर, छोटे कद के और गठे हुए शरीर के होते हैं। ये विशेप लम्वे नही होते। इनमे गाय का वजन लगभग ७००-७५० पौड होता है। वैल का ७५०-८०० पौड और साड का ८००-८५० पौड होता है। इनकी खाल पतली और रोआ छोटा और चमकीला होता है। इनका रग गेरुआ होता है। किसी-किसी पशु के सफेद चकत्ते भी होते है। कमर कुछ चौडी होती है परन्तु विशेप लम्बी नही होती। यह वीच के हिस्से से थुई तक कुछ दवी हुई सी मालूम देती है। पेट खूव विकसित, गहरा और दोनो तरफ खूव फैला हुआ होता है। छाती खूव विकसित और चौडी होती है। सिर चौडा और एक-सा होता है। माथा चौडा होता है। सीग थोडे मोटे और दोनो तरफ वाहर को होते हुए ऊपर को गोलाकार रूप मे जाते हैं। ये काफी मजवूत और थोडे मोटे होते हैं। चेहरा मझला और भरा हुआ तथा माथे के पास कुछ चौडा होता है। आख वडी, नाक खूव विकसित और कान मझले और कुछ लटकवा होते है। गर्दन छोटी और मजवूत होती है। गलकम्वल मझली जाति का लटकवा होता है। थुई अच्छी और
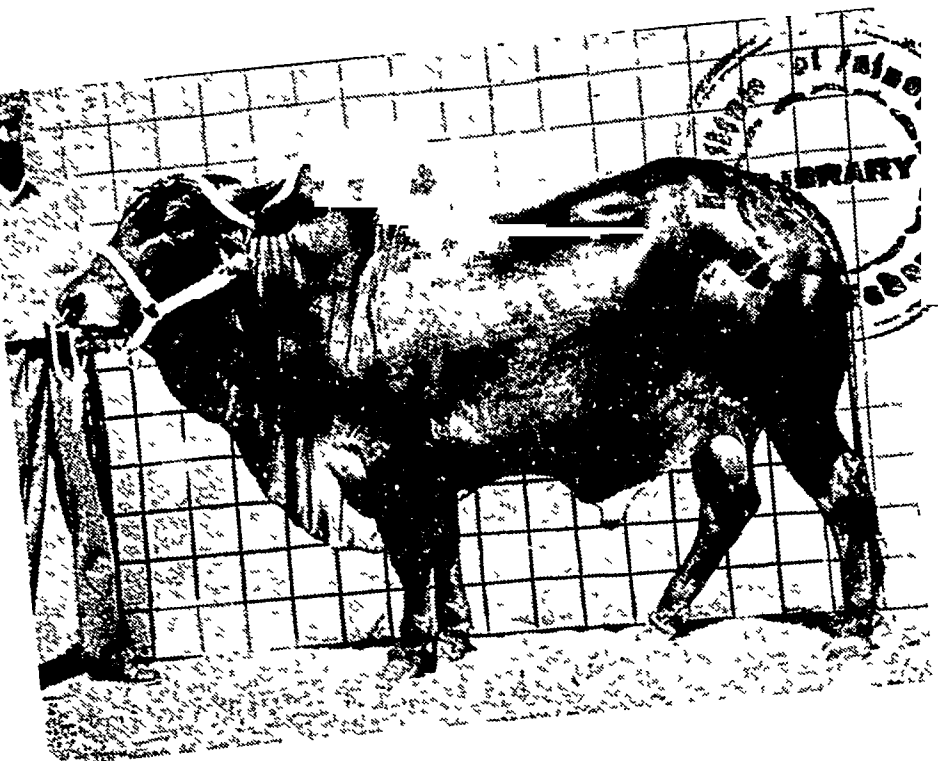
सिधी नसल का साड

विकसित होती है, परन्तु नर-पशुओ की कुछ बडी होता है। कूल्हे चौडे, लम्बे और खूब मजबूत होते हैं। ऐन आदर्श माप के फैले हुए और खूब भरवा होते है। मूतना कुछ वडे साइज का और लटकवा होता है। सिंधी गायो का आगे का हिस्सा कुछ हल्का और पीछे का हिस्सा कुछ भारी होता है। आकार-प्रकारो मे वे दूध देनेवाली आदर्श गाय होती हैं।

जलवायु, भूमि और खानपान का असर—यहा तापक्रम प्राय' ३५° और १२०° फा० और वर्षा प्रतिवर्ष ८ इच होती है। इनका इलाका रेतीली दुमट मिट्टी का हे। इस इलाके मे वर्षा वहुत ही कम होती है। यहा खनिज पदार्थो की कमी नहीं है। सिचाई के साधन उपलब्ध होने के कारण यहा अच्छी खेती होती हे। यहा पशुओ के लिए चारा वोने का भी रिवाज है। इन पशुओ को गोचर-भूमि मे भी चराया जाता है। यहा के रहनेवालो का पशु-पालन भी एक धन्धा है। इस कारण गोचरो मे चराने के अलावा वे इनकी और भी खिलाई-पिलाई तथा अच्छी देखभाल करते है। अत यहा के पशुओ का अस्थि-पजर विकसित और मजबूत होता हे और वे खूब दूध देते हैं। शरीर मे विशेष भारी न होने के कारण ये अपने मालिको के लिए बहुत लाभप्रद साबित हुए हैं।

: १७ :

सिंहावलोकन

पीछे के पृष्ठो मे भारत के पन्द्रह प्रदेशो मे ४४ जातियो के पशुओ का वर्णन दिया गया है। इनमे पजाव के हरियाना, महागुजरात के काकरेज, आध्र के अगोल तथा राजस्थान के थारपारकर नसल के पशुओ को दोहरे उद्देश्य की श्रेणी मे रखा गया है। इन जातियो की गाये प्रतिदिन सात सेर से वारह सेर तक या इससे भी अधिक दूध देती है और एक व्यात मे ढाई हजार पौड से चार हजार पौड तक दूध देने की क्षमता रखती है। इन जातियो के बैल अच्छे काम करनेवाले और खूब मजबूत होते है।

पाकिस्तान की साहीवाल और सिधी, महागुजरात की गिर और राजस्थान की राठी इन चार जातियो की गाये दूध देने मे बहुत उत्तम है, परन्तु इन जातियो के बैल काम करने की दृष्टि से साधारण होते है। इनको बहुत अधिक दूध देनेवाले एकागी पशुओ की श्रेणी मे रक्खा है। इनके अलावा हरियाना, काकरेज, अगोल और थारपारकर नसल की गाये उपर्युक्त गायो की भाति खूब दूध देती है। यदि इनको मिला लिया जाय तो बहुत अधिक दूध देनेवाली आठ नसले हो जाती है। मैसूर के अमृतमहल, मध्यप्रदेश के मालवी, राजस्थान के नागौरी और मद्रास-प्रदेश के काग्यम पशुओ को बहुत अच्छा काम करनेवाले और मजबूत बैल उत्पन्न करनेवाले एकागी पशुओ की श्रेणी मे रक्खा है। इनकी गाये साधारण दूध देनेवाली होती है। इनके अलावा दोहरे उद्देश्य वाले हरियाना और कांकरेज नसलो के बैल भी उपर्युक्त बैलो की ही भाति बहुत अच्छा काम करनेवाले होते है। यदि इन्हे इनमे मिला लिया जाय,

तो बहुत अच्छा काम करनेवाले और मजबूत बैलो की श्रेणी मे छः नसलो के पशु हो जाते है ।

अन्य जातियो के पशुओ मे मध्य-प्रदेश के ग्वालो और निमारी, महाराष्ट्र प्रदेश के खिलारी और डागी, आंध्र-प्रदेश के देओनी और कृष्णा-घाटी, उत्तर-प्रदेश के मध्यम मेवाती, हरियाना और विहार-प्रदेश के साहावादी तथा वगाल-प्रदेश के श्री पशु सम्मिलित है । इनकी गाये दूध देने में खासी अच्छी होती है और बैल साधारण काम करनेवाले होते है। अगर बैल अच्छा काम करनेवाले और मजबूत होते है तो गाय साधारण दूध देनेवाली होती है । इसलिए इनको सर्वागी अर्थात्—'साधारण दूध देनेवाले और साधारण काम करनेवाले' पशुओ की श्रेणी मे रखा है ।

अन्य तीन जातियो के पशुओ मे मैसूर के हल्लीकर, मद्रास के आलमबाडी और वरनुर के बैल अच्छा काम करनेवाले होते है परन्तु गाये कम दूध देती है। इसलिए ये भी एकागी पशुओ की श्रेणी मे आते हैं।

चार पहाडी जाति के पशुओ मे ग्याल, नैपाली, गौर वगाल के, तथा असमी पशु, जो पहाडी पशुओं-जैसे ही है, सम्मिलित है । ये चारो ही अनिश्चित श्रेणी के पशुओ मे मे है । ये पशु दूध कम देते है और इनके बैल भी अन्य जातियो के मुकावले मे कम काम करनेवाले होते है । श्री नसल के पशु भी खासकर वगाल के दार्जिलिग जिले मे सिक्किम के नीचे के भाग मे मिलते है और असम मे वगाल से लगे हुए भाग मे भी पाये जाते है। ये दूध देने मे अच्छे होते है और काम करने मे भी साधारण होते है। यदि इनको उपर्युक्त चार पहाडी पशुओ की श्रेणी मे जोड़ दिया जाय तो पहाडी पशुओ की सूची मे पाच जाति के पशु हो जाते है ।

चवालीस जातियो के पशुओ मे से तीस के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है । शेष चौदह केरल प्रदेश के पशु, मध्य-प्रदेश के सतपुडा डिवीजन के, नर्मदा घाटी के मध्य भाग के, विन्ध्याचली और अत्यधिक वर्षा और धान के इलाके के पशु, छत्तीसगढी, उत्तर-प्रदेश के पोन्वार,

ओरांगढी और गोलगारिया, बिहार-प्रदेश मे मध्य-बिहार के पशु, गगा और नेपाल राज्य के बीच के भाग के बचौर और पूर्वी-पश्चिमी बिहार के पशु, बगाल-प्रदेश के मैदानी पशु, आसाम-प्रदेश के तथा उडीसा के प्राय सभी पशु अनिश्चित श्रेणी मे आते है। ये पशु अवर्णनीय है। इनकी गाये बहुत कम दूध देती है और बैल साधारण काम करनेवाले होते है। इस श्रेणी के पशु प्राय छोटे कद के और अत्यधिक वर्षा या धान के इलाके मे और पहाडी भाग मे पाये जाते हैं। इन पशुओ को अनिश्चित श्रेणी मे इसलिए रखा गया है कि ये प्राय भिन्न-भिन्न जातियो के पशुओ के मिश्रण है और इनकी योग्यता के सम्बन्ध मे कोई निश्चय या भरोसा करना कठिन है।

निम्नलिखित तालिका मे भारतीय पशुओ की स्थिति की झाकी प्रस्तुत की जाती है, ताकि पाठक भारत की अनेक जातियो, नसलो, अवर्णनीय पशुओ तथा किसी विशेष जाति के पशुओ के चुनाव और उनकी उन्नति के विषय मे निश्चय कर सके।

नीचे तालिका मे बहुत अधिक अच्छा, या अच्छा, साधारण, कम और निकृष्ट शब्दो का प्रयोग किया गया है। समस्त भारत की औसत स्थिति को सम्मुख रखकर उपर्युक्त और अन्य तुलनात्मक शब्दो का व्यवहार किया गया है। अमुक पशु, जिसे उपर्युक्त दृष्टि से कम उपयोगी बताया गया है, सम्भव है अपने निवास-स्थान या क्षेत्र मे अच्छा उपयोगी या बढिया समझा जाता हो, परन्तु भारत की औसत स्थिति को सम्मुख रखकर उसे कम उपयोगी ही समझना चाहिए।

●